॥ श्रीः ॥

काशी आयुर्वेद ग्रन्थमाला

११२

घेरण्ड संहिता

परमहंस स्वामी अनन्त भारती

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्य विद्या, आयुर्वेद तथा दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक

दिल्ली-110007 (भारत)

॥श्रीः॥

काशी आयुर्वेद ग्रन्थमाला

112

घेरण्ड संहिता

(आलोक व्याख्या सहित)

व्याख्याता

परमहंस स्वामी अनन्त भारती

सम्पादिका

श्रीमती सीमा सागर

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्य-विद्या, आयुर्वेद एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक

दिल्ली–110007 (भारत)

प्रकाशकः

चौखम्भा पब्लिशर्स

गोकुल भवन, के-37/109, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी-221001 (भारत)

शाखाः

चौखम्भा ओरियन्टालिया

पोस्ट बाक्स नं. 2206

बंग्लो रोड, 9-यू.बी., जवाहर नगर

किरोड़ीमल कॉलेज (कमला नगर के पास)

दिल्ली-110007 (भारत)

फोनः (011) 40230818, मो. 9910289743

email: chaukhambhaorientalia@gmail.Com

© चौखम्भा पब्लिशर्स, वाराणसी

संस्करण : 2021

मूल्य : रु. 250/-

ISBN No. : 978-81-89469-51-1

मुद्रक : तरुण ऑफसेट प्रेस, नई दिल्ली-2

विषयानुक्रमणिका

	पृ. संख्या
भूमिका	5
प्रथमोपदेशः	7
षट्कर्म	7
द्वितीयोपदेशः	34
आसनविधिः	34
तृतीयोपदेशः	55
मुद्राकथन-प्रकरणम्	55
चतुर्थोपदेशः	96
प्रत्याहार प्रकरण	96
पञ्चम उपदेशः	98
प्राणायामप्रकरणम्	98
षष्ठः उपदेशः	138
ध्यानयोगः	138
सप्तम उपदेशः	147
समाधियोग	147

भूमिका

घेरण्डसंहिता हठयोग की साधना-विधि का वर्णन करने वाले सुविदित ग्रन्थों में अन्यतम है। इस ग्रन्थ के सात खण्ड हैं, जिन्हें उपदेश नाम से अभिहित किया गया है। इन सात उपदेश के विषय इस प्रकार हैं—प्रथम उपदेश में षट्कर्म, द्वितीय में आसन-विधि, तृतीय में मुद्राओं का परिचय, चतुर्थ में प्रत्याहार, पञ्चम में प्राणायाम के प्रकार और विधि षष्ठ में ध्यानयोग एवं सप्त में समाधियोग। ग्रन्थ का निबन्धन चण्डकापालि के प्रश्न एवं घेरण्ड मुनि के उत्तर के रूप में हुआ है। ग्रन्थकार ने साधना की प्रत्येक क्रिया का वर्णन करके प्रायः उसके फल का अर्थवाद शैली का वर्णन किया है। जैसे-विपरीत करणीमुद्रा जिसे शीर्षासन के नाम से भी जाना जाता है का वर्णन करने के बाद ग्रन्थकार का कथन है—

मुद्रेयं साधयेन्नित्यं जरामृत्युं च नाशयेत्।
स सिद्धः सर्वलोकेषु प्रलयेऽपि न सीदति।।

अर्थात् "जो इस मुद्रा (विपरीत करणी = शीर्षासन) का अभ्यास करता है। वह वृद्धावस्था और मृत्यु को नष्ट कर देता है वह समस्त लोकों में सिद्ध होता है और प्रलय में भी उसका नाश नहीं होता"। अब प्रश्न यह कि क्या प्राचीन काल में किसी ने भी स्वयं घेरण्ड मुनि ने भी इसकी साधना नहीं की? यदि की तो इस कथन के अनुसार उनकी मृत्यु नहीं होनी चाहिए थी और इस मुद्रा (आसन) के अभ्यासी अधिसंख्य मात्रा में आज भी विद्यमान होने चाहिए थे किन्तु नहीं हैं। इसी प्रकार जब प्रलयकाल में सब कुछ विलीन हो जाता है, तो उनकी भौतिक सत्ता कैसे रह सकती है? इसलिए मुझे स्वीकार करना पड़ता है कि यह कथन अर्थवाद-शैली में अर्थात् अत्युक्ति-रूप है। अर्थवादशैली में कथनविधि-विशेष की ओर आकर्षित करने के लिए चिरकाल से प्रचलित रहा है, जिसका प्रयोग घेरण्डमुनि ने ग्रन्थ में अनेक बार किया है।

इस ग्रन्थ के प्रथम उपदेश में ग्रन्थकार ने सोलह प्रकार की धौति

मूलशोधन जलबस्ति और स्थलबस्ति भेद से दो प्रकार की बस्ति, नेति लौलिकी (न्योली) त्राटक तथा तीन प्रकार की कपालभाति (वातक्रम, व्युत्क्रम और शीत्क्रम) का समुचित परिचय दिया है।

द्वितीय उपदेश में निम्नलिखित एकतीस आसनों का परिचय दिया है—सिद्धासन, पद्मासन, भद्रासन, मुक्तासन, वज्रासन, स्वस्तिकासन, सिंहासन, गोमुखासन, वीरासन, धनुरासन, मृतासन (शवासन), गुप्तासन, मत्स्यासन पश्चिमोत्तानासन, मत्स्येन्द्रासन, गोरक्षासन, उत्कटासन, संकटासन, मयूरासन, कुक्कुटासन, कूर्मासन, उत्तानकूर्मासन, मण्डूकासन, उत्तानमण्डूकासन, वृक्षासन, गरुडासन, वृषासन, शलभासन, मकरासन, उष्ट्रासन, भुजंगासन और योगासन।

तृतीय उपदेश में निम्नलिखित पचीस (25) मुद्राओं का परिचय दिया गया है—महामुद्रा, नमोमुद्रा, उड्डीयानबन्ध, जालन्धरबन्ध, मूलबन्ध, महाबन्ध, महावेध, खेचरीमुद्रा, विपरीतकरणी (शीर्षासन), योनिमुद्रा, वज्रोलिमुद्रा, शक्तिचालिनीमुद्रा, ताडागीमुद्रा, माण्डूकीमुद्रा, शाम्भवीमुद्रा, पृथिवीधारणामुद्रा, आम्भसीमुद्रा, आग्नेयीधारणामुद्रा, वायवीधारणामुद्रा, आकाशीधारणामुद्रा, अश्विनीमुद्रा, पाशिनीमुद्रा, काकीमुद्रा, मातङ्गिनीमुद्रा और भुजङ्गीमुद्रा।

चतुर्थ उपदेश में प्रत्याहार का वर्णन है। यह उपदेश केवल पाँच पद्य का है। पाँचवें उपदेश में प्रथम प्रणायाम के समय और आहार का विस्तारपूर्वक वर्णन करके धौतिकर्म द्वारा मन्त्रसहित और विना मन्त्र के नाड़ीशुद्धि का निर्देश करके सूर्यभेद, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्छा और केवल कुम्भक भेद से सात प्रकार के कुम्भक, प्राणायाम की विधि और फल का वर्णन किया है।

छठे उपदेश में दो प्रकार के स्थूल ध्यान का वर्णन करके दो प्रकार का ज्योतिध्यान और अन्त में सूक्ष्मध्यान की विधि बतायी है।

अन्तिम सातवें उपदेश में ध्यानयोग समाधि, नादयोग समाधि, रसानन्द समाधि, लयसिद्धि समाधि, भक्तियोग समाधि और राजयोग समाधियों का वर्णन किया है।

स्वामी अनन्त भारती

घेरण्ड संहिता

प्रथमोपदेशः

षट्कर्म

एकदा चण्डकापालिर्गत्वा घेरण्डकुटि्टमम्।
प्रणम्य विनयाद् भक्त्या घेरण्डम्परि **पृच्छति**।।1।।

अन्वयः- एकदा चण्डकापालिः घेरण्डकुट्टिमम् गत्वा भक्त्या घेरण्डम् प्रणम्य विनयात् परिपृच्छति।

पदार्थः- (एकदा) एक दिन (चण्डकापालिः) चण्डकापालि नामक राजा (घेरण्डकुट्टिमम् गत्वा) महर्षि घेरण्ड की कुटिया पर जाकर (भक्त्या) भक्तिपूर्वक (प्रणम्य) प्रणाम करके (विनयात्) विनयपूर्वक (परिपृच्छति) पूछते हैं।

भावार्थः- एक समय राजा चण्डकापालि महर्षि घेरण्ड की कुटिया पर जाते हैं, उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं और फिर विनयपूर्वक उनसे पूछते हैं।

घटस्य योगं योगेश! तत्त्वज्ञानस्य कारणम्।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि योगीश्वर! वद प्रभो!।।2।।

अन्वयः- योगेश! घटस्य योगम् तत्त्वज्ञानस्य कारणम् (भवति) प्रभो योगश्वर! इदानीम् श्रोतुम् इच्छामि (कृपया) वद।

पदार्थः- (योगेश) हे योगविद्या के स्वामी (घटस्य-योगम्) शरीर द्वारा सम्पादितयोग (तत्त्वज्ञानस्य कारणम्) तत्त्वज्ञान का कारण है (प्रभो योगीश्वर) हे योगविद्या के अधीश्वर! (इदानीम्) इस समय (श्रोतुम् इच्छामि) मैं सुनना चाहता हूँ (वद) कृपा करके उसका उपदेश कीजिए।

भावार्थः- हे योगविद्या के आचार्य! मुझे विदित हुआ है कि शरीर द्वारा की गयी योगसाधना से तत्त्वज्ञान प्राप्त होता है। इसलिए मैं

उसे आप से जानना चाहता हूँ। कृपया उपदेश कीजिए।

घेरण्ड उवाचः-

साधु साधु महाबाहो **यस्मात् त्वं** परिपृच्छसि।
कथयिष्यामि ते वत्स सावधानोऽवधारय।।3।।

अन्वयः- महाबाहो! साधु साधु यस्मात्त्वम् परिपृच्छसि (अतः) वत्स! ते कथयिष्यामि, स-अवधानः अवधारय।

पदार्थः- हे (महाबाहो)! हे महावीर! (साधु साधु) बहुत उत्तम है (यस्मात्) क्योंकि (त्वम् पृच्छसि) तुम पूछ रहे हो (वत्स) प्रिय पुत्र। इसलिए (ते कथयिष्यामि) तुम्हारे लिए बताऊँगा (स-अवधानः) एकाग्रचित्त होकर (अवधारय) भलीप्रकार सुनो।

भावार्थः-हे महावीर! बहुत उत्तम, क्योंकि तुम जिज्ञासु पूछ रहे हो इसलिए मैं उस योगविद्या का कथन करूँगा, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो और समझो।

नास्ति मायासमं पापं नास्ति योगात् परम्बलम्।
नास्ति ज्ञानात्परो बन्धुर्नाहंकारात्परो **रिपुः।।4।।**

अन्वयः- मायासमम् पापम् नास्ति, योगात् परम् बलम् न अस्ति, ज्ञानात् परः बन्धुः न अस्ति, अहंकारात्परः रिपुः न (अस्ति)।

पदार्थः- (माया-समम्) माया के समान (पापम् न अस्ति) कोई पाप नहीं है, (योगात् परम्) योग से बढ़कर (बलम् न अस्ति) कोई बल नहीं है, (ज्ञानात् परः) ज्ञान से बढ़कर (बन्धुः न अस्ति) कोई बन्धु नहीं है, (अहंकारात् परः) अहंकार से बढ़कर (रिपुः न) कोई शत्रु नहीं है।

भावार्थः- माया से बढ़कर कोई पाप अर्थात् दुःख देने वाला नहीं है, योग सबसे बड़ा बल है, ज्ञान से बढ़कर कोई बन्धु अर्थात् सहायक नहीं है और अहंकार सबसे बड़ा अपना शत्रु है।

अभ्यासः कादिवर्णानां **यथाशास्त्राणि बोधयेत्।**
तथा योगं समासाद्य तत्त्वज्ञानं च लभ्यते।।5।।

अन्वयः- यथा क-आदिवर्णानाम् अभ्यासः शास्त्राणि बोधयेत् तथा योगम् समासाद्य तत्त्वज्ञानम् च लभ्यते।

पदार्थः- (यथा) जिस प्रकार (क-आदिवर्णानाम् अभ्यासः) क इत्यादि वर्णमाला का अभ्यास (शास्त्राणि बोधयेत्) शास्त्रज्ञान की पृष्ठभूमि बनता है (तथा) उसी प्रकार (योगं समासाद्य) योग को प्राप्त करके (तत्त्वज्ञानम् लभ्यते) तत्त्वज्ञान प्राप्त किया जाता है।

भावार्थः- जिस प्रकार वर्णमाला का ज्ञान होने पर ही शास्त्रों का ज्ञान होता है, उसी प्रकार साधक योग में सिद्धि पाकर ही तत्त्वज्ञान प्राप्त करता है।

सुकृतैः दुष्कृतैः कार्यैं जायते प्राणिनां घटः।
घटादुत्पद्यते **कर्म** घटीयन्त्रं **यथा भ्रमेत्।।6।।**

अन्वयः- सुकृतैः दुष्कृतैः कार्यैः प्राणिनां घटः जायते, घटात् कर्म उत्पद्यते यथा घटी-यन्त्रम् भ्रमेत् (तथा कर्मघटचक्रं भ्रमते)।

पदार्थः- (सुकृतैः दुष्कृतैः कार्यैः) अच्छे और बुरे कर्मों के परिणाम में (प्राणिनां घटः जायते) प्राणियों को शरीर धारण करना होता है, तथा (घटात् कर्म उत्पद्यते) शरीर से कर्म उत्पन्न होते हैं। (यथा घटीयन्त्रम् भ्रमेत्) जिस प्रकार रहट में पानी के पात्र ऊपर नीचे जाते आते रहते हैं, उसी प्रकार कर्म और शरीर धारण का क्रम चलता है।

भावार्थः- पुण्य और पापरूप कर्मों से जीव को शरीर मिलता है और शरीर मिलने पर जीव कर्म करता है और वे कर्म फिर शरीर मिलने के कारण बनते हैं, इस प्रकार रहट के समान कर्म और शरीर का अर्थात् कर्म और जन्म का चक्र चलता रहता है।

ऊर्ध्वाधो भ्रमते यद्वत् घटीयन्त्रं **गवां भ्रमात्।**
तद्वत्कर्मवशाज्जीवो **भ्रमते** जन्ममृत्युभिः।।7।।

अन्वयः- यद्वत् गवाम् भ्रमात् घटीयन्त्रम् ऊर्ध्व-अधः भ्रमते तद्वत् कर्मवशात् जीवः जन्ममृत्युभिः भ्रमते।

पदार्थः- (यद्वत्) जिस प्रकार (गवाम् भ्रमात्) बैलों के घूमने से (घटीयन्त्रम्) रहट में लगे पानी के पात्र (ऊर्ध्व अधः) ऊपर और नीचे (भ्रमते) आते जाते हैं (तद्वत्) उसी प्रकार (कर्मवशात्) कर्मों के कारण (जीवः) जीव (जन्ममृत्युभिः) जन्म और मृत्यु के चक्र में (भ्रमते) चक्कर लगाता रहता है।

भावार्थः- जिस प्रकार बैलों के घूमने से रहट के जल निकालने वाले पात्र ऊपर नीचे आते जाते रहते हैं, उसी प्रकार अपने पुण्य पापमय कर्मों के कारण जीव जन्म-मृत्यु के चक्कर में पड़ा रहता है।

आमं कुम्भमिवाम्भस्थं जीर्यमाणः **सदा घटः।**
योगानलेन **सन्दह्य** घटशुद्धिं समाचरेत्।।8।।

अन्वयः- अम्भस्थम् आमम् कुम्भम् इव घटः सदा जीर्यमाणः, (तम्) योग अनलेन सन्दह्य घटशुद्धिम् समाचरेत्।

पदार्थः- (अम्भस्थम्) पानी में स्थित (आमम् कुम्भम् इव) कच्चे घड़े के समान (घटः) शरीर (सदा जीर्यमाणः) निरन्तर जीर्ण हो रहा है उसको (योग-अग्निना) योगरूपी अग्नि से (संदह्य) पकाकर (घटशुद्धिम् समाचरेत्) शरीर की शुद्धि करे।

भावार्थः- जिस पानी में स्थित कच्चा घड़ा प्रतिक्षण जीर्ण होता रहता है, उसी प्रकार शरीर भी प्रतिक्षण जीर्ण होता रहता है, उसे अर्थात् शरीर को योगरूपी अग्नि में पकाकर उसकी शुद्धि करे।

सप्तसाधनम्

शोधनं दृढता चैव स्थैर्यं धैर्यं च लाघवम्।
प्रत्यक्षं चैव निर्लिप्तिः **घटस्य** सप्तसाधनम्।।9।।

अन्वयः- घटस्य शोधनम् दृढता च स्थैर्यम् धैर्यम् लाघवम् च प्रत्यक्षम् निर्लिप्तिः घटस्य सप्तसाधनम्।

पदार्थः- (घटस्य) शरीर की (शोधनम्) शुद्धि करना (दृढता) शरीर को दृढ बनाना (स्थैर्यम्) स्थिर बनाना (धैर्यम्) धीरता लाना (लाघवम्) शरीर में हलकापन लाना (प्रत्यक्षम्) आत्मा का प्रत्यक्ष कर लेने की योग्यता (निर्लिप्तिः)आसक्ति का अभाव (सप्तसाधनम्) ये सात सिद्धियाँ लायी जाती हैं।

भावार्थः- साधक योगसाधना द्वारा इन सात योग्यताओं को सिद्ध करता है। शरीर की शुद्धि, शरीर में दृढ़ता, स्थिरता, धृति, लघुता अर्थात् भारीपन का अभाव, आत्मा का प्रत्यक्ष करना, दूरश्रुति-दूरदृष्टि और आशक्ति का अभाव।

षट् कर्मणा शोधनं च आसनेन भवेद् दृढम्।
मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता।।10।।
प्राणायामाल्लाघवं ध्यानात्प्रत्यक्षमात्मनः।
समाधिना च निर्लिप्तिः मुक्तिरेव न संशयः।।11।।

अन्वयः- षट्कर्मणा शोधनम्, आसनेन दृढम् भवेत्, मुद्रया स्थिरता प्रत्याहारेण च धीरता भवेत्, प्राणायामात् लाघवम् भवेत्, ध्यानात् आत्मनः प्रत्यक्षम्, समाधिना निर्लिप्तिः, (ततः) मुक्तिः एव भवेत्। (अत्र) संशयः न।

पदार्थः- (षट्कर्मणा) षट् कर्मों द्वारा (शोधनम् भवेत्) शरीर की शुद्धि होती है, (आसनेन) आसन के द्वारा (दृढम् भवेत्) शरीर दृढ़ होता है, (मुद्रया) मुद्रा के अभ्यास से (स्थिरता भवेत्) शरीर में स्थिरता होती है, (प्रत्याहारेण धीरता) प्रत्याहार से धीरता अर्थात् विषयों के प्रति आकर्षण का अभाव होता है, (प्राणायामात् लाघवम्) प्राणायाम से शरीर में लघुता आती है, (ध्यानात् आत्मनः प्रत्यक्षम्) ध्यान से आत्म का प्रत्यक्ष होता है और (समाधिना निर्लिप्तिः) समाधि से संसार के प्रति लगाव मिट जाता है, उसके अनन्तर (मुक्ति एव भवति) मोक्ष होता ही है, (संशयः न) इसमें कोई सन्देह नहीं है।

भावार्थः- नेति धौति आदि षट् कर्मों से शरीरशुद्धि होती है, आसनों से शरीर दृढ़ होता है, मुद्राओं से स्थिरता आती है, प्रत्याहार से

इन्द्रियों की विषयों के प्रति लोलुपता समाप्त होती है, प्राणायाम से शरीर में लघुता आती है, ध्यान से आत्मा का प्रत्यक्ष होता है समाधि से संसार के प्रति वैराग्य होता है और उसके अनन्तर योगी को मुक्ति अवश्य होती है, इसमें थोड़ा भी सन्देह नहीं है।

षट् कर्म

धौतिर्बस्तिस्तथा नेतिर्लौलिकी **त्राटकन्तथा।**
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत्।।12।।

अन्वयः- धौतिः बस्तिः नेतिः लौलिकी तथा त्राटकः कपालभातिश्च एतानि षट्कर्माणि (साधकः) समाचरेत्।

पदार्थः- (धौतिः) धौति (बस्तिः) बस्तिक्रिया (नेतिः) नेतिक्रिया (लौलिकी) न्योलीक्रिया (त्राटकम्) त्राटक (तथा कपाल भाति) और कपालभाति (एतानि षट्कर्माणि) ये षट् कर्म हैं, साधक इन्हें (समाचरेत्) करे।

भावार्थः- धौति, बस्ति, नेति, लौलिकी, त्राटक और कपालभाति जिनकी क्रियाविधि अग्रिम पद्यों में बतायी जा रही है, साधक को चाहिए कि वह इनका अभ्यास करे।

नोटः- हठप्रदीपिका के अनुसार से षट्कर्म केवल कफप्रधान और मोटे (मेदस्वी) लोगों को ही करने चाहिए, अन्य को नहीं।

(ह.प्र. 2/21)

धौतिः-

अन्तर्धौतिर्दन्तधौतिर्हृद्धौतिर्मूलशोधनम्।
धौतिं चतुर्विधां कृत्वा घटं कुर्वन्ति निर्मलम्।।13।।

अन्वयः- अन्तर्धौतिः दन्तधौतिः हृद्धौतिः मूलशोधनम् (एवं) चतुर्विधाम् धौतिं कृत्वा (योगिनः) घटम् निर्मलम् कुर्वन्ति।

पदार्थः- (अन्तर्धौतिः) अन्दर को धोना, (दन्तधौतिः) दाँतों का शोधन, (हृद्धौतिः) हृदय फेफड़ों का शोधन, (मूलशोधनम्) मलमार्ग का शोधन, इस प्रकार (चतुर्धा धौतिम् कृत्वा) चार प्रकार के शोधन

करके (घटम् निर्मलम् कुर्वन्ति) योगी लोग शरीर को मलरहित करते हैं।

भावार्थः- धौति चार प्रकार की है जिनका परिचय आगे दिया जा रहा है, इन्हें करके योगी लोग शरीर को मलरहित करते हैं।

अन्तर्धौति

वातसारं वारिसारं वह्निसारं बहिष्कृतम्।
घटस्य निर्मलार्थाय अन्तर्धौतिश्चतुर्विधा।।14।।

अन्वयः- घटस्य निर्मलार्थाय अन्तर्धौतिः चतुर्विधा— वातसारम् वारिसारम् वह्निसारम् बहिष्कृतम्।

पदार्थः- (घटस्य निर्मलार्थाय) शरीर को मलरहित करने के लिए (अन्तर्धौतिः चतुर्विधा) अन्तर्धौति चार प्रकार की है— (वातसारम्, वारिसारम्, वह्निसारम् बहिष्कृतम्) वातसार, वारिसार, अग्निसार और बहिष्कृत।

भावार्थः- शरीर को निर्मल बनाने के लिए अन्तर्धौति चार प्रकार की है— वातसार, वारिसार, अग्निसार और बहिष्कृत। इनका परिचय क्रमशः अग्रिम पद्यों में प्रस्तुत है।

वातसार

काकचञ्चुवदास्येन पिबेद् वायुं शनैःशनैः।
चालयेदुदरं पश्चाद्वर्त्मना रेचयेच्छनैः।।15।।

अन्वयः- काकचञ्चुवत् आस्येन शनैःशनैः पवनम् पिबेत् उदरम् चालयेत्, पश्चात्वर्त्मना शनैः रेचयेत्।

पदार्थः- (काकचञ्चुवत् आस्येन) कौवे की चोंच की भाँति मुख करके उससे (शनैः शनैः) धीरे धीरे (पवनम् पिबेत्) वायु को अन्दर लेवे, पुनः (उदरम् चालयेत्) पेट को चलाये (पश्चात् वत्मना) पीछे के मार्ग से अर्थात् गुदामार्ग से (शनैः शनैः) धीरे धीरे (रेचयेत्) बाहर निकाले।

भावार्थः- मुख को कौवे की चोंच के समान बनाकर उससे श्वास अन्दर भरे, फिर पेट को चलाये, तदनन्तर गुदामार्ग से वायु को धीरे धीरे निकाले।

वातसार फलम्

वातसारं परं गोप्यं देहनिर्मलकारणम्।
नाशयेत्सकलान्रोगान् वह्निमुद्दीपयेत्तथा।।16।।

अन्वयः- देहनिर्मलकारणम् वातसारम् **परम् गोप्यम्**। एतत् सकलान् रोगान् नाशयेत् तथा वह्निम् उद्दीपयेत्।

पदार्थः- (देहनिर्मलकारणम्) शरीर को मलरहित करने वाला (वातसारम्) वातसार क्रिया (परम् गोप्यम्) अत्यन्त गुप्त रखने योग्य है, यह (सकलान् रोगान्) सम्पूर्ण रोगों को (नाशयेत्) नष्ट करता है (तथा) और (वह्निम् उद्दीपयेत्) जठराग्नि को तीव्र करता है।

भावार्थः- देहको निर्मल करने वाली क्रिया वातसार अत्यन्त गुप्त रखने योग्य है, इसके अभ्यास से सभी रोग दूर हो जाते हैं और जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

वारिसार

आकण्ठं पूरयेद्वारि-**वक्त्रेण च** पिबेच्छनैः।
चालयेदुदरेणैव चोदराद्रेचयेदधः।।17।।

अन्वयः- **वक्त्रेण शनैःशनैः वारि पिबेत्** आकण्ठम् **पूरयेत्**, उदरेण **चालयेत्**, उदरात् **अधः रेचयेत्**।

पदार्थः- (वक्त्रेण) मुख के द्वारा (शनैः शनैः) धीरे धीरे (वारि) जल को (पिबेत्) पिये (आकण्ठम् पूरयेत्) कण्ठपर्यन्त भर ले (उदरेण चालयेत्) पेट द्वारा उसे चलाये (उदरात् अधः रेचयेत्) पेट से नीचे से निकाल दे।

भावार्थ- मुख से धीरे से पानी को पीते हुए कण्ठपर्यन्त भर ले, पेट को चलाकर पानी को चलाये और नीचे से निकाल देवे।

वारिसारफलः-

वारिसारं परं गोप्यं देहनिर्मलकारकम्।
साधयेत्तं प्रयत्नेन देवदेहं प्रपद्यते।।18।।

अन्वयः- देहनिर्मलकारकम् वारिसारम् परम् गोप्यम्, तम् प्रयत्नेन साधयेत् देवदेहम् प्रपद्यते।

पदार्थः- (देहनिर्मलकारकम्) देह को निर्मल करने वाला (वारिसारम् परम् गोप्यम्) वारिसार क्रिया अतिगोपनीय है (तम् प्रयत्नेन) उसे प्रयत्नपूर्वक (साधयेत्) सिद्ध करे, इससे (देवदेहम् प्रपद्यते) शरीर दिव्य शरीर बन जाता है।

भावार्थः- वारिसार का अभ्यास शरीर को निर्मल और दिव्य बना देता है, अतः उसका अभ्यास प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए। साथ ही गुप्त भी रखना चाहिए।

अग्निसारः-

नाभिग्रन्थिं **मेरुपृष्ठे शतवारञ्च कारयेत्।**
अग्निसार **इयं** धौतिर्योगिनां योगसिद्धिदा।।19।।

अन्वयः- नाभिग्रन्थिं मेरुपृष्ठे शतवारम् कारयेत्, इयम् अग्निसारः धौतिः योगिनाम् सिद्धिदा।

पदार्थः- (नाभिग्रन्थिम्) नाभि की ग्रन्थि को (मेरुपृष्ठे) मेरुदण्ड के साथ (शतवारम् कारयेत्) सौ बार लगाये। (इयम् अग्निसारः धौतिः) अग्निसार नामक यह धौति क्रिया (योगिनाम्) योगियों को (सिद्धिदा) सिद्धि प्रदान करती है।

भावार्थः- उदर पर स्थित नाभिग्रन्थि को पीछे की ओर तानकर सौ बार लगाये। इसे अग्निसार धौति कहते हैं, इसके निरन्तर अभ्यास से योगियों को सिद्धि मिलती है।

अग्निसारफलम्-

उदरामयजं **त्यक्त्वा** जठराग्निं विवर्द्धयेत्।
एषा धौति परा गोप्या देवानामपि **दुर्लभा।।20।।**

केवलं धौतिमात्रेण देवदेहं भवेद् ध्रुवम्।

अन्वयः- एषा धौतिः उदर आमयजम् त्यक्त्वा जठराग्निम् विवर्धयेत्। (इयम्) देवानाम् अपि दुर्लभा परागोप्या केवलम् धौतिमात्रेण ध्रुवम् देवदेहम् भवेत्।

पदार्थः- (एषा धौतिः) यह धौति (उदर-आमयजम्) पेट के रोगों से उत्पन्न कष्टों से (त्यक्त्वा) छुड़ाकर (जठराग्निम्) पेट की अग्नि को (विवर्द्धयेत्) बढ़ाती है। यह (देवानाम् अपि दुर्लभाः) देवताओं को भी दुर्लभ है (परा गोप्या) अतिशय गोपनीय है (केवलम् धौतिमात्रेण) केवल इस धौति के अभ्यास से ही (ध्रुवम्) निश्चय ही (देवदेहम् भवेत्) शरीर दिव्य हो जाता है।

भावार्थः- यह अग्निसार धौति उदररोगों को नष्ट करके जठराग्नि को प्रदीप करती है, देवों को भी दुर्लभ है इसे गुप्त रखना चाहिए। चाहे जिसको न सिखाये। केवल इस धौति के अभ्यास से ही शरीर दिव्य हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

बहिष्कृत **धौतिः-**

काकीमुद्रां शोधयित्वा पूरयेदुदरम्महत्।।21।।
धारयेदर्धयामन्तु चालयेदधोवर्त्मना।
एषा धौतिः परागोप्या न प्रकाश्या कदाचन।।22।।

अन्वयः- काकीमुद्राम् शोधयित्वा महत् उदरम् पूरयेत् अर्धयामम् धारयेत् अधोवर्त्मना चालयेत्। एषा धौतिः परागोप्या कदाचन न प्रकाश्या।

पदार्थः- (काकीमुद्राम् शोधयित्वा) कौवे की चोंच की भांति ओठों को करके (महत् उदरम् पूरयेत्) मुँह से सांस लेकर पेट को खूब भरे (अर्धयामम्) आधे याम अर्थात् डेढ़ घंटा (धारयेत्) वायु को अन्दर ही रोके (अधोवर्त्मना) नीचे मार्ग अर्थात् गुदा से (चालयेत्) निकाले (एषा धौतिः) यह धौति (परा गोप्या) अत्यन्त गोपनीय है (कदाचन न प्रकाश्या) कभी प्रचारित न करे।

भावार्थः- बहिष्कृत धौति में मुख में काकीमुद्रा बनाकर पेट में खुब वायु भरते हैं और डेढ़ घंटे वायु को पेट में रोककर गुदामार्ग से वायु को बाहर निकाल देते हैं।

नाड़ीप्रक्षालनः-

नाभिमग्ने जले स्थित्वा नाडीशक्तिं विसर्जयेत्।
कराभ्यां क्षालयेन्नाडीं यावन्मलविसर्जनम्।।23।।
तावत्प्रक्षाल्य नाडीञ्च उदरे वेशयेत्पुनः।
इदम्प्रक्षालनं गोप्यं देवानामपि **दुर्लभम्।।24।।**
केवलं धौतिमात्रेण देवदेहो भवेद् ध्रुवम्।

अन्वयः- नाभिमग्ने जले स्थित्वा नाडीशक्तिं विसर्जयेत्। यावत् मलविसर्जनम् तावत् नाडीम् कराभ्याम् क्षालयेत्। प्रक्षाल्य पुनः उदरे वेशयेत्। देवानाम् अपि दुर्लभम् इदम् प्रक्षालनम् गोप्यम्। केवलम् प्रक्षालनमात्रेण ध्रुवं देवदेहः भवेत्।

पदार्थः- (नाभिमग्ने जले) नाभि तक गहरे जल में (स्थित्वा) बैठकर (नाडीशक्तिम्) शक्तिनाड़ी अर्थात् मलाशय को (विसर्जयेत्) बाहर निकाले (यावत् मलविसर्जनम्) जब तक उसका मल न छूट जाये (तावत्) तब तक (कराभ्याम्) दोनों हाथों से (क्षालयेत्) साफ करे। (प्रक्षाल्य) धो करके (पुनः उदरे वेशयेत्) फिर पेट में स्थापित करे। (देवनाम् अपि दुर्लभम्) देवताओं के लिए भी दुर्लभ (इदम् प्रक्षालनम्) यह शक्तिनाड़ी स्वच्छ करने की विधि (गोप्यम्) गोपनीय है। (केवलम् प्रक्षालनमात्रेण) केवल इसे स्वच्छ करने से ही (देवदेहः) साधक दिव्य शरीर वाला (ध्रुवम् भवेत्) अवश्य हो जाता है।

भावार्थः- लगभग नाभि की गहराई वाले जल में बैठकर शक्तिनाड़ी अर्थात् बड़ी आंत के मलाशय वाले भाग को बाहर निकालकर दोनों हाथों से तब तक धोवे जब तक सब मल छूट न जाये, शुद्ध करके उसे फिर पेट में यथा स्थान स्थापित कर दे। नाड़ी

प्रक्षालन की यह विधि देवों को भी दुर्लभ है, अत्यन्त गोपनीय है। इससे साधक का शरीर निश्चय ही दिव्य हो जाता है।

यामार्ध धारणे शक्तिं यावन्न धारयेन्नरः।।25।।

बहिष्कृतमहद्धौतिस्तावच्चैव न जायते।

अन्वयः- नरः यावत् यामार्ध धारणे शक्तिं न धारयेत् तावत् च बहिष्कृतमहद् धौतिः न एव जायते।

पदार्थः- (नरः) साधक मनुष्य (यावत्) जब तक (यामार्धम्) डेढ़ घंटे (धारणे शक्तिम्) धारण करने हेतु शक्ति को (न धारयेत्) नहीं प्राप्त कर लेता है, (तावत्) तब तक उससे (बहिष्कृतमहत् धौतिः) उपर्युक्त नाड़ी बहिष्कृत धौति (न जायते) सिद्ध नहीं होती।

भावार्थः- साधक को जब तक आधे याम अर्थात् डेढ़ घंटे तक रोकने की शक्ति नहीं आ जाती, तब तक वह इस महती बहिष्कृत धौति करने में समर्थ नहीं होता।

दन्तधौतिः-

दन्तमूलं जिह्वामूलं रन्ध्रञ्च कर्णयुग्मयोः।।26।।

कपालरन्ध्रम्पञ्चैतैः दन्तधौतिः विधीयते।

अन्वयः- दन्तमूलम् जिह्वामूलम् कर्णयुग्मयोः रन्ध्रम्, कपालरन्ध्रम् च एतैः पञ्च दन्तधौतिः विधीयते।

पदार्थः- (दन्तमूलम्) दाँतों के मूल को स्वच्छ करना (जिह्वामूलम्) जिह्वा को उसके मूल तक स्वच्छ करना (कर्णयुग्मयोः रन्ध्रम्) दोनों कानों के छिद्रों को स्वच्छ करना (कपालरन्ध्रम्) तालुमूल में विद्यमान छिद्रपर्यन्त स्वच्छ करना (एते पञ्च) इन पाँचों धौतियों के द्वारा (दन्तधौतिः विधीयते) दन्तधौति की जाती है।

भावार्थः- दाँतों को उसके मूल तक स्वच्छ करना, जिह्वा को उसके मूल तक स्वच्छ करना, दोनों कानों के छिद्र को स्वच्छ करना, तालु के मूल में विद्यमान छिद्र तक स्वच्छ करना, दन्तधौति में इन पाँच को स्वच्छ किया जाता है।

दन्तमूलधौतिः-

खादिरेण **रसेनाथ** मृत्तिकया **च शुष्कया।।27।।**

मार्जयेद् दन्तमूलन्तु यावत्किल्बषमाहरेत्।

अन्वयः- खादिरेण रसेन शुष्कया मृत्तिकया च यावत् किल्विषम् आहरेत् (तावत्) दन्तमूलम् तु मार्जयेत्।

पदार्थः- (खादिरेण रसेन) खदिर वृक्ष के रस अर्थात् कत्था से (शुष्कया मृत्तिकया च) सूखी मिट्टी से (यावत्) जब तक (किल्विषम् आहरेत्) मल पूर्णतया न हट जाये तब तक (दन्तमूलम्) दाँतों के मूल तक (मार्जयेत्) शोधन करे।

भावार्थः- कत्था या सूखी मिट्टी से दाँतों की जड़ तक उन्हें रगड़कर साफ करे जब तक पूरा मल न दूर हो जाए।

दन्तमूलम्पराधौतिर्योगिनां योगसाधने।।28।।

नित्यं कुर्यात् प्रभाते तु दन्तरक्षाय योगवित्।

दन्तमूलं धारणादिकार्येषु योगिनाम्मतम्।।29।।

अन्वयः- योगिनाम् योगसाधने दन्तमूलम् परा धौतिः, योगवित् दन्तरक्षाय प्रभाते तु नित्यम् कुर्यात् धारणा-आदिकार्येषु दन्तमूलम् परम् मतम्।

पदार्थः- (योगिनाम् योगसाधने) योगियों की योगसाधना में (दन्तमूलम् पराधौतिः) दन्तमूल धौति श्रेष्ठ धौति है। (योगवित्) योगसाधक (दन्तरक्षाय) दाँतों की रक्षा के लिए (प्रभाते तु) प्रातःकाल तो (नित्यम् कुर्यात्) प्रतिदिन करे। (धारण आदि कार्येषु) धारणा आदि कार्यों में (दन्तमूलम्) दन्तमूल धौति (योगिनाम् मतम्) योगीजन आवश्यक मानते हैं।

भावार्थः- योगियों की योगसाधना में दन्तधौति का विशेष महत्त्व है अतः साधक को दातों की रक्षा के लिए प्रातः दाँतों का शोधन नित्य करना चाहिए। धारणा आदि की साधना में योगी दन्तमूल को बहुत महत्त्व देते हैं।

जिह्वामूलधौतिः-

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि **जिह्वाशो**धनकारणम्।
जरामरणरोगादीन्नाशयेद्दीर्घलम्बिका।।30।।
तर्जनीमध्यमानामा अङ्गुलित्रययोगतः।
वेशयेद्गलमध्ये **तु** मार्जयेल्लम्बिका **जडम्**।।30।।
शनैःशनैर्माजयित्वा कफदोषं निवारयेत्।

अन्वयः- अथ अतः जिह्वाशोधनकारणम् सम्प्रवक्ष्यामि दीर्घ-लम्बिका जरामरणरोगादीन् नाशयेत्। तर्जनी मध्यमा-अनामा अङ्गुलि-त्रययोगतः गलमध्ये वेशयेत् शनैःशनैः लम्बिकाजडम् मार्जयेत्, मार्जयित्वा कफदोषम् निवारयेत्।

पदार्थः- (अथ अतः) अब इसके बाद (जिह्वाशोधनकारणम्) जिह्वा को शुद्ध करने का उपाय (सम्प्रवक्ष्यामि) बतलाऊँगा (दीर्घलम्बिका) लम्बी जिह्वा (जरामरणरोगादीन्) बुढ़ापा मृत्यु और रोग आदि को (नाशयेत्) नष्ट करती है। (तर्जनी-मध्यमा-अनामा-अङ्गुलित्रययोगतः) तर्जनी अंगुली, मध्यमा और अनामिका अंगुली तीनों को मिलाकर (गलमध्ये) गले के मध्य तक (वेशयेत्) प्रवेश कराये (शनैः शनैः) धीरे धीरे (लम्बिकाजडम्) जीभ के मूल को (मार्जयेत्) शुद्ध करे (मार्जयित्वा) शुद्ध करके (कफदोषम्) कफविकार को (निवारयेत्) दूर करे।

भावार्थः- इसके अन्तर मैं जिह्वा शुद्ध करने का उपाय बताऊँगा। दीर्घ जिह्वा वृद्धावस्था मृत्यु और रोगों को दूर हटाती है। तर्जनी, मध्यमा और अनामिका तीनों अंगुलियों को मिलाकर गले के मध्य तक ले जाकर धीरे-धीरे जिह्वा के मूल का शोधन करे और उसे शुद्ध करके कफ सम्बन्धी विकार को हटाये।

तदग्रं लोहयन्त्रेण **कर्षयित्वा शनैः शनैः**।।31।।
मार्जयेन्नवनीतेन दोहयेच्च **पुनः पुनः**।

अन्वयः- तदग्रम् लोहयन्त्रेण शनैः शनैः कर्षयित्वा मार्जयेत्, नवनीतेन पुनः पुनः दोहयेच्च।

पदार्थः- (तदग्रम्) जिह्वा के अग्रभाग को (लोहयन्त्रेण) लोहे की जीभी से (शनैः शनैः कर्षयित्वा) धीरे धीरे रगड़ते हुए खींचकर (मार्जयेत्) शुद्ध करे और (नवनीतेन दोहयेच्च) मक्खन से दोहन करे।

भावार्थः- जिह्वा के मूल से आगे के भाग का अर्थात् सम्पूर्ण जीभ को लोहे की बनी जीभी से साफ कर उसके बाद मक्खन की सहायता से जीभ का दोहन करे।

नित्यं कुर्यात् प्रयत्नेन रवेरुदयकेऽस्तके।।33।।

एवं कृते च नित्ये तु लम्बिकादीर्घतां व्रजेत्।

अन्वयः- नित्यम् रवेः उदयके अस्तके च प्रयत्नेन कुर्यात्, एवं नित्ये कृते तु लम्बिका दीर्घताम् व्रजेत्।

पदार्थः- (नित्यम्) प्रतिदिन (रवेः उदयके अस्तके) सूर्य के उदय और अस्त होने के समय (प्रयत्नेन कुर्यात्) प्रयत्नपूर्वक करे (एवं नित्ये कृते) इसप्रकार प्रतिदिन करने से (लम्बिका दीर्घताम् व्रजेत्) जीभ लम्बी हो जाती है।

भावार्थः- इस प्रकार प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल इसे प्रयत्नपूर्वक करे, इसप्रकार करने से जीभ लम्बी हो जाती है।

कर्णधौतिः-

तर्जन्यनामिकायोगान्मार्जययेत्कर्णरन्ध्रयोः।।34।।

नित्यमभ्यासयोगेन नादान्तरं प्रकाशयेत्।।

अन्वयः- तर्जनी-अनामिकायोगात् कर्णरन्ध्रयोः मार्जयेत् नित्यम् अभ्यासयोगेन नाद-आन्तरम् प्रकाशयेत्।

पदार्थः- (तर्जनी-अनामिका योगात्) तर्जनी और अनामिका अंगुलियों को मिलाकर (कर्णरन्ध्रयोः) दोनों कानों के छिद्रों को (मार्जयेत्) शुद्ध करे। (नित्यम् अभ्यासयोगेन) नित्य अभ्यास करने से (नाद-आन्तरम् प्रकाशयेत्) अन्दर का नाद प्रकट होता है।

भावार्थः- तर्जनी और अनामिका को मिलाकर दोनों कान के छिद्रों को शुद्ध करे, प्रतिदिन अभ्यास करने से आन्तरिक नाद सुनाई देने लगता है।

कपालरन्ध्रशोधनम्-

बद्धानुष्ठेन दक्षेण मार्जयेद् भालरन्ध्रकम्।।35।।
एवमभ्यासयोगेन कफदोषं निवारयेत्।
नाडीनिर्मलतां **याति** दिव्यदृष्टिः **प्रजायते**।।36।।
निद्रान्ते भोजनान्ते च दिवान्ते च दिने दिने।

अन्वयः- दक्षिणेन बद्धाङ्गुष्ठेन निद्रान्ते भोजनान्ते च दिनान्ते च दिने दिने भालरन्ध्रम् मार्जयेत् एवम् अभ्यासयोगेन कफदोषम् निवारयेत् (एतेन) नाडी निर्मलताम् याति दिव्यदृष्टिः प्रजायते।

पदार्थः- (दक्षिणेन बद्ध-अङ्गुष्ठेन) दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधकर अंगूठे को उठाकर उसके द्वारा (निद्रान्ते) प्रातः नींद से जागने के बाद (भोजनान्ते) भोजन के बाद (दिवान्ते च) और दिन के अन्त में (दिने दिने) प्रतिदिन (भालरन्ध्रम्) तालु मूल में स्थित छिद्र को एक अन्य मत के अनुसार मस्तक के उस भाग के छिद्र को जो शिशुओं के माथे में हड्डियों के परस्पर जुड़े न होने के कारण कोमल तालु होता है उस छिद्र को (मार्जयेत्) शुद्ध करे (एवम् अभ्यासयोगेन) इस प्रकार के अभ्यास से साधक (कफदोषम्) वहाँ पर स्थित विकृत कफ को (निवारयेत्) दूर करे। इससे (नाडी निर्मलताम् याति) नाड़ी निर्मल होती है और (दिव्यदृष्टिः प्रजायते) दृष्टि दिव्य हो जाती है।

भावार्थः- मुट्ठी के कारण बँधे हुए अंगूठे से प्रातः जगने पर भोजन के बाद और सांयकाल भालरन्ध्र अर्थात् तालुमूल में स्थित छिद्र एक अन्य मत के अनुसार शिर पर स्थित छिद्र का शोधन करे ऐसा नित्य करने से कफ-दोष दूर होता है और साधक को दिव्यदृष्टि प्राप्त होती है।

हृद्धौतिं त्रिविधां कुर्यात् दण डवमनवाससा।।37।।

अन्वयः- हृत्-धौतिम् दण्ड-वमन-वाससा त्रिविधाम् कुर्यात्।

पदार्थः- (हृत्-धौतिम्) हृत् धौति को (दण्डवमनवाससा) केला व हल्दी के डण्ठल से वमन से और वस्त्र से (त्रिविधाम् कुर्यात्) तीन प्रकार से करे।

भावार्थः- हृद्धौति तीन प्रकार से की जाती है-केला या हल्दी के डण्ठल से, वमन से और वस्त्र से।

रम्भादण्डं हरिद्रायाः वेत्रदण्डं तथैव च।
हृन्मध्ये चालयित्वा तु पुनः प्रत्याहरेच्छनैः।।38।।

अन्वयः- रम्भादण्डम् हरिद्रायाः (दण्डम्) वेत्रदण्डम् च हृत्मध्ये चालयित्वा पुनः शनैः प्रत्याहरेत्।

पदार्थः- (रम्भादण्डम्) केले के पत्ते का डण्ठल (हरिद्रायाः) हल्दी के पत्ते का डण्ठल (तथा वेत्रदण्डम् च) और वेत का डण्ठल (हृत्मध्ये) हृदयपर्यन्त (चालयित्वा) ले जाकर (पुनः शनैः) फिर धीरे से (प्रत्याहरेत्) निकाल ले।

भावार्थः- केले के पत्ते के डण्ठल को या हल्दी के पत्ते के डण्ठल को या वेंत के डंडे को हृदय तक ले जाकर फिर धीरे से निकाले।

कफं पित्तं तथा क्लेदं रेचयेदूर्ध्ववर्त्मना।
दण्डधौतिविधानेन हृद्रोगं नाशयेद् ध्रुवम्।।39।।

अन्वयः- (साधकः) दण्डधौतिविधानेन कफम् पित्तं तथा क्लेदम् ऊर्ध्ववर्त्मना रेचयेत् हृद्रोगम् (च) ध्रुवम् नाशयेत्।

पदार्थः- साधक (दण्डधौतिविधानेन) दण्डधौति के अभ्यास से (कफम् पित्तम् क्लेदम्) कफ, पित्त और दूषित तरल पदार्थों को (ऊर्ध्ववर्त्मना) ऊपर के मार्ग से (रेचयेत्) निकाल देता है (हृद्रोगम् च) और हृदयसम्बन्धी रोग को (ध्रुवम् नाशयेत्) निश्चय ही नष्ट कर देता है।

भावार्थः- दण्डधौति के द्वारा कफ, पित्त और दूषित तरल पदार्थ ऊपर के मार्ग अर्थात मुखमार्ग बाहर निकल जाते हैं और हृदयरोग और उसकी सम्भावना नष्ट हो जाती है।

वमनधौतिः-

भोजनान्ते पिबेद्वारि **चाकण्ठं पूर्णितं सुधी।**
ऊर्ध्वदृष्टिं **क्षणं कृत्वा तज्जलं** वामयेत्पुनः।।40।।
नित्यमभ्यासयोगेन कफपित्तं निवारयेत्।।41।।

अन्वयः- सुधीः भोजन-अन्ते आकण्ठम् वारि पिबेत् क्षणम् ऊर्ध्वदृष्टिम् कृत्वा तत् पूर्णितम् जलम् पुनः वामयेत्, नित्यम् अभ्यासयोगेन कफपित्तम् निवारयेत्।

पदार्थः- (सुधीः) बुद्धिमान् साधक (भोजनान्ते) भोजन के उपरान्त (आकण्ठम्) कण्ठपर्यन्त (वारि पिबेत्) जल पिये (क्षणम् ऊर्ध्वदृष्टिम् कृत्वा) कुछ क्षण ऊपर दृष्टि करके (तत्पूर्णितम् जलम्) उस भरे हुए जल को (वामयेत्) वमन करे। (नित्यम् अभ्यासयोगेन) इसके नित्य अभ्यास से (कफपित्तम् निवारयेत्) कफ और पित्त को दूर कर दे।

भावार्थः- बुद्धिमान् साधक भोजन के उपरान्त कण्ठपर्यन्त जल पिये फिर कुछ क्षण ऊपर देखकर उस पिये हुए जल का वमन कर दे। इस क्रिया के अभ्यास से दूषित कफ और पित्त निकल जाता है।

वस्त्रधौतिः-

चतुरङ्गुलविस्तारं **सूक्ष्मवस्त्रं** शनैर्गिलेत्।
पुनःप्रत्याहरेदेतत् प्रोच्यते धौतिकर्मकम्।।42।।

अन्वयः- चतुरङ्गुलविस्तारम् सूक्ष्मवस्त्रम् शनैः गिलेत् पुनः प्रत्याहरेत् एतत् धौतिकर्मकम् प्रोच्यते।

पदार्थः- (चतुरङ्गुलविस्तारम्) चार अंगुल चौड़ा (सूक्ष्मवस्त्रम्) पतला वस्त्र (शनैः गिलेत्) धीरे धीरे निगले (पुनः प्रत्याहरेत्) फिर धीरे धीरे निकाले (एतत्) इसे (धौतिकर्म प्रोच्यते) धौतिकर्म कहा जाता है।

भावार्थः- चार अंगुल चौड़े वस्त्र को धीरे धीरे निगले और फिर उसे निकाले। इसे धौतिकर्म कहा जाता है।

गुल्मज्वरप्लीहकुष्ठं कफपित्तं विनश्यति।
आरोग्यं बलपुष्टिश्च भवेत्तस्य **दिने दिने।।43।।**

अन्वयः- (एतेन) गुल्मज्वरप्लीहकुष्ठम् कफपित्तम् विनश्यति, आरोग्यम् बलपुष्टिः च तस्य दिने दिने भवेत्।

पदार्थः- इस धौति से (गुल्म-ज्वर-प्लीहकुष्ठम्) गुल्म ज्वर प्लीहा अर्थात् तिल्ली के रोग और कुष्ठ तथा (कफ-पित्तम्) कफ और पित्त सम्बन्धी रोग (विनश्यति) नष्ट हो जाते हैं (आरोग्यम्) पूर्ण स्वास्थ्य (बलपुष्टिः च) बल और शरीर की पुष्टि (तस्य) उस साधक की (दिने दिने भवेत्) प्रतिदिन होती है।

भावार्थः- इस धौति के अभ्यास से गुल्म (वायुगोला आदि) ज्वर, कुष्ठ, प्लीहा (तिल्ली) के रोग और कुष्ठ तथा कफ और पित्त के विकार से होने वाले रोग नष्ट हो जाते हैं तथा साधक का बल बढ़ता है और शरीर पुष्ट होता है।

मूलशोधनम्ः-

अपानक्रूरता **तावद्** यावन्मूलन्न शोधयेत्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन **मूलशो**धनमाचरेत्।।44।।

अन्वयः- यावत् मूलम् न शोधयेत् तावत् अपानक्रूरता, तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मूलशोधनम् आचरेत्।

पदार्थः- (यावत्) जब तक (मूलम् न शोधयेत्) गुदामार्ग की शुद्धि नहीं कर ली जाती, (तावत्) तब तक (अपानक्रूरता) अपानवायु की अस्वाभाविकता बनी रही है (तस्मात्) इसलिए (सर्वप्रयत्नेन) पूरे प्रयत्न से (मूलशोधनम् आचरेत्) गुदामार्ग का शोधन करे।

भावार्थः- जब तक गुदागमार्ग का शोधन नहीं हो जाता तब तक अपानवायु में अस्वाभाविकता बनी रहती है, अतः पूरे प्रयत्न से मूल अर्थात् गुदामार्ग का शोधन पूरे प्रयत्न से करे।

पीतमूलस्य दण्डेन मध्यमाङ्गुलिनापि वा।
यत्नेन क्षालयेत् गुह्यं वारिणा च पुनः पुनः।।45।।

अन्वयः- पीतमूलस्य दण्डनेन अपि वा मध्यम अङ्गुलिना यत्नेन वारिणा पुनः पुनः गुह्यम् क्षालयेत्।

पदार्थः- (पीतमूलस्य दण्डेन) हल्दी के डण्ठल से (अपि वा) अथवा (मध्यम-अङ्गुलिना) बीच की अङ्गुलि के द्वारा (यत्नेन) प्रयत्नपूर्वक (वारिणा) जल से (पुनः पुनः क्षालयेत्) बार बार धोये।

भावार्थः- हल्दी के डण्ठल अथवा बीच की अंगुलि के द्वारा प्रयत्नपूर्वक जल से गुदामार्ग का प्रक्षालन करना चाहिए।

वारयेत्कोष्ठकाठिन्यमामाजीर्णं निवारयेत्।
कारणं कान्तिपुष्ट्योश्च दीपयेद् वह्निमण्डलम्।।46।।

अन्वयः- कोष्ठकाठिन्यम् वारयेत् आम-अजीर्णम् निवारयेत् कान्तिपुष्ट्योः च कारणम् वह्निमण्डलम् च दीपयेत्।

पदार्थः- यह मूलशोधन (कोष्ठकाठिन्यम्) पेट का कड़ापन (वारयेत्) दूर करता है, (आम-अजीर्णम्) आँव और अजीर्ण को (निवारयेत्) मिटा देता है (कान्ति-पुष्ट्योः) और यह कान्ति तथा पुष्टि का (कारणम्) हेतु है (वह्निमण्डलम् च) और शरीर की अग्नियां को (दीपयेत्) प्रदीप्त करता है।

भावार्थः- मूलशोधन की क्रिया से पेट का कड़ापन दूर होता है, आँव और अजीर्ण का रोग मिट जाता है शरीर पुष्ट होता है और उसमें कान्ति आती है शरीर का अग्निसमूह प्रदीप्त होता है।

बस्तिप्रकरणः-

जलबस्तिः शुष्कबस्तिः बस्तिः स्याद् द्विविधा स्मृता।
जलबस्तिं जले कुर्यात् शुष्कबस्तिं सदा क्षितौ।।47।।

अन्वयः- बस्तिः द्विविधा स्मृता स्यात् जलबस्ति शुष्कबस्तिः। जलबस्तिम् जले (कुर्यात्) शुष्कबस्तिं सदा क्षितौ कुर्यात्।

पदार्थः- (बस्तिः द्विविधा) बस्ति के दो प्रकार की (स्मृता स्यात्) बतायी जाती है (जलबस्तिः शुष्कबस्तिः) जलबस्ति और

शुष्कबस्ति। (जलबस्तिम्) जलबस्ति को (जले) जल में करे और (शुष्कबस्तिम्) शुष्कबस्ति को (क्षितौ कुर्यात्) भूमि पर करे।

भावार्थः- बस्ति के दो प्रकार हैं-जल बस्ति और शुष्कबस्ति। जलबस्ति को जल में करना चाहिए और शुष्कबस्ति को पृथिवी पर किया जाता है।

जलबस्तिः-

नाभिमग्नजले पायुं न्यस्तवानुत्कटासनम्।
आकुञ्चनम्प्रसारणञ्च जलबस्तिं समाचरेत्।।48।।

अन्वयः- नाभिमग्नजले उत्कटासनम् न्यस्तवान् पायुम् आकुञ्चनम् प्रसारणम् च (कुर्वन्) जलबस्तिम् समाचरेत्।

पदार्थः- (नाभिमग्नजले) नाभि जिसमें डूब जाये इतने जल में (उत्कटासनम् न्यस्तवान्) उत्कटासन में बैठा हुआ साधक (पायुम्) गुदा का (आकुञ्चनम् प्रसारणम्) सिकोड़ने और फैलाने की क्रिया द्वारा (जलबस्तिम् समाचरेत्) जलबस्ति करे।

भावार्थः- उत्कटासन में नाभि तक गहरे जल में बैठकर साधक गुदा का संकोचन प्रसारण करते हुए जलबस्ति करे।

प्रमेहञ्च उदावर्त्तं क्रूरवायुं निवारयेत्।
भवेत् स्वच्छन्ददेहश्च कामदेवसमो भवेत्।।49।।

अन्वयः- (जलबस्तिः) प्रमेहम् उदावर्त्तम् क्रूरवायुं च निवारयेत्। (साधकः) स्वच्छन्ददेहः कामदेव समः च भवेत्।

पदार्थः- जलबस्ति (प्रमेहम्) प्रमेहरोग को (उदावर्त्तम्) अफारा रोग को (क्रूरवायुम्) अपानवायु की क्रूरता को (निवारयेत्) दूर करती है, इससे साधक (स्वच्छन्द देहः) स्वस्थ शरीर वाला (कामदेवसमः च) और कामदेव के समान सुन्दर (भवेत्) हो जाता है।

भावार्थः- जलबस्ति क्रिया से प्रमेह उदावर्त्त (अफारा) और अपानवायु के अव्यवस्था से उत्पन्न कष्टों की निवृत्ति होती है और साधक पूर्ण स्वस्थ तथा कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है।

स्थलबस्तिः-

बस्तिः पश्चिमतानेन चालयित्वा **शनैरधः।**
अश्विनीमुद्रया पायुमाकुञ्चयेत्प्रसारयेत्।।50।।

अन्वयः- अधः पश्चिमतानेन अश्विनीमुद्रया **पायुम्** चालयित्वा शनैः आ कुञ्चयेत् प्रसारयेत्।

पदार्थः- (अधः) भूमि पर (पश्चिमतानेन) पश्चिमोत्तान आसन से (अश्विनीमुद्रया) अश्विनीमुद्रा के द्वारा (पायुम्) गुदा को (चालयित्वा) गतिशील करके (शनैः) धीरे धीरे (आकुञ्चयेत्) सिकोड़े और (प्रसारयेत्) फैलाये (बस्तिः) इसे स्थलबस्ति कहते हैं।

भावार्थः- स्थलबस्ति करने के लिए भूमि पर पश्चिमोत्तान आसन में बैठकर अश्विनीमुद्रा द्वारा गुदा में पहले गति उत्पन्न करके उसे धीरे धीरे सिकोड़े और फैलाये।

एवमभ्यासयोगेन कोष्ठदोषं **न विद्यते।**
वर्धयेज्जठराग्निञ्च आमवातं विनाशयेत्।।51।।

अन्वयः- एवम् **अभ्यासयोगेन** कोष्ठदोषम् **न** विद्यते, जठराग्निम् च वर्धयेत्, आमवातम् विनाशयेत्।

पदार्थः- (एवम् अभ्यासयोगेन) इस प्रकार अभ्यासयोग से (कोष्ठदोषम् **न विद्यते**) साधक में पेट के रोग नहीं होते। (जठराग्निम् वर्धयेत्) जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है, (आमवातम् विनाशयेत्) आमवात रोग दूर हो जाता है।

भावार्थः- योग की इस क्रिया के अभ्यास से पेट के रोग नहीं होते। जठराग्नि प्रदीप्त होती है और आमवात रोग दूर हो जाता है।

नेतिः-

वितस्तिमानं सूक्ष्मसूत्रं नासानाले प्रवेशयेत्।
मुखान्निर्गमयेत्पश्चात्प्रोच्यते **नेति कर्मतत्।।52।।**

अन्वयः- वितस्तिमानम् सूक्ष्मसूत्रम् नासानाले प्रवेशयेत् पश्चात् मुखात् निर्गमयेत्, तत् नेतिकर्म प्रोच्यते।

पदार्थः- (वितस्तिमानम्) एक बित्ता लम्बा (सूक्ष्मसूत्रम्) सूत का पतला समूह (नासानाले) नासिका के छिद्र में (प्रवेशयेत्) डाले (मुखात् निर्गमयेत्) और मुख से निकाले (तत्) उसे (नेतिकर्म प्रोच्येत्) नेतिकर्म कहा जाता है।

भावार्थः- एक बित्ता अर्थात् 12 अंगुल सूत की पतली कोमल रस्सी नाक से अन्दर डाले और मुख से निकाले। इस क्रिया को नेतिकर्म कहते हैं।

साधनान्नेतियोगस्य[1] खेचरीसिद्धिमाप्नुयात्।
कफदोषाः विनश्यन्ति दिव्यदृष्टिः प्रजायते।।53।।

अन्वयः- नेतियोगस्य साधनात् (साधकः) खेचरीसिद्धिम् आप्नुयात्, कफदोषाः, विनश्यन्ति दिव्यदृष्टिः प्रजायते।

पदार्थः- (नेतियोगस्य साधनात्) नेतियोग क्रिया की साधना से साधक (खेचरीसिद्धिम् आप्नुयात्) खेचरीसिद्धि को प्राप्त कर लेता है (कफदोषाः विनश्यन्ति) कफ सम्बन्धी रोग नष्ट होते हैं (दिव्यदृष्टिः प्रजायते) दिव्यदृष्टि उत्पन्न होती है।

भावार्थः- योग की क्रिया नेति के अभ्यास से साधक को खेचरीसिद्धि प्राप्त होती है, कफसम्बन्धी रोग दूर हो जाते हैं और साधक को दिव्यदृष्टि प्राप्त होती है।

लौलिकी-

तुन्दं अमन्दवेगेन भ्रामयेदुभपार्श्वयोः।
सर्वरोगान्निहन्तीयन्देहानलविवर्धनम्।।54।।

अन्वयः- तुन्दम् अमन्दवेगेन उभपार्श्वयोः भ्रामयेत्। इयम् सर्वरोगान् निहन्ति देहानलविवर्धनम्।

पदार्थः- (तुन्दम्) पेट को (अमन्दवेगेन) तीव्रगति से (उभपार्श्वयोः) दोनों वगल में (भ्रामयेत्) घुमाये, यह लौलिकी क्रिया है। (इयम्) यह (सर्वरोगान्निहन्ति) सब रोगों को नष्ट करती है

---

1. कर्मांति इति पाठान्तरम्।

(देहानल-विवर्धनम्) शरीर की अग्नि जठराग्नि को बढ़ाती है।

भावार्थः- लौलिकी करने के लिए पेट को तीव्र गति से दोनों ओर घुमाये। इस क्रिया को आजकल न्योली कहते हैं। इसके अभ्यास से शरीर के सभी रोग दूर होते हैं और जठराग्नि तीव्र होती है।

निमेषोन्मेषकं **त्यक्त्वा सूक्ष्मलक्ष्यं** निरीक्षयेत्।
पतन्ति यावदश्रूणि **त्राटकं प्रोच्यते बुधैः**।।55।।
एवमभ्याससोगेन **शाम्भवी जायते ध्रुवम्।**
नेत्ररोगाः विनश्यन्ति दिव्यदृष्टिः **प्रजायते**।।56।।

अन्वयः- निमेष-उन्मेषकम् त्यक्त्वा यावत् अश्रूणि पतन्ति (तावत्) सूक्ष्मलक्षम् निरीक्षयेत् (इदम्) बुधैः त्राटकम् प्रोच्यते। एवम् अभ्यासयोगेन शाम्भवी ध्रुवम् जायते नेत्ररोगाः विनश्यन्ति, दिव्यदृष्टिः प्रजायते।

पदार्थः- (निमेष-उन्मेषम् त्यक्त्वा) पलकों का गिरना और उठना रोककर (यावत् अश्रूणि पतन्ति) असुओं का गिरना प्रारम्भ होने तक (सूक्ष्म-लक्ष्यम्) किसी सूक्ष्म लक्ष्य में (निरीक्षयेत्) एक टक देखता रहे (बुधैः त्राटकम् प्रोच्यते) इसे विद्वान् लोग त्राटक कहते हैं। (एवम् अभ्यासयोगेन) इस प्रकार अभ्यास करने से (शाम्भवी) शाम्भवी मुद्रा (ध्रुवम् जायते) अवश्य सिद्ध हो जाती है, (नेत्ररोगाः विनश्यन्ति) नेत्रों का रोग नष्ट हो जाते हैं। और (दिव्यदृष्टिः प्रजायते) साधक की दृष्टि दिव्य हो जाती है।

भावार्थः- पलकों का झपकना रोकर किसी सूक्ष्मवस्तु को अपलक तब तक देखे जब तक आँसू न निकलने लगे, इसे त्राटक कहते हैं। इसके अभ्यास से शाम्भवीमुद्रा अवश्य सिद्ध हो जाती है। नेत्रों के सभी रोग दूर होते हैं और दृष्टि दिव्य हो जाती है।

कपालभातिः-

वातक्रमेण व्युत्क्रमेण शीत्क्रमेण **विशेषतः**।
भालभातिं **त्रिधा कुर्यात्** कफदोषं निवारयेत्।।57।।

अन्वयः- भालभातिम् त्रिधा कुर्यात् वातक्रमेण व्युत्क्रमेण विशेषतः शीत्क्रमेण। (इयम्) कफदोषम् निवारयेत्।

पदार्थः- (भालभातिम्) कपालभाति को (त्रिधा कुर्यात्) तीन प्रकार से करे (वातक्रमेण) वातक्रम से (व्युत्क्रमेण) विपरीतक्रम से (विशेषतः) विशेष रूप से (शीत्क्रमेण) शीत्क्रम से। यह (कफदोषम् निवारयेत्) कफसम्बन्धी रोगों को दूर करती है।

भावार्थः- कपालभाति के तीन प्रकार हैं— वातक्रम कपालभाति, व्युत्क्रम कपालभाति और शीत्क्रम कपालभाति। इनके अभ्यास से कफ सम्बन्धी रोग दूर हो जाते हैं, और नहीं होते।

वातक्रमः-

इडाया पूरयेद्वायुं रेचयेत् पिङ्गला पुनः।
पूरयेद्वा पिङ्गलया पुनश्चन्द्रेण रेचरेत्।।58।।
रेचकं पूरकं कृत्वा वेगेन न तु चालयेत्।
एवमभ्यासयोगेन कफदोषं निवारयेत्।।59।।

अन्वयः- इडया वायुम् पूरयेत् पुनः पिङ्गला रेचयेत्, पुनः पिङ्गलाया पूरयेत् चन्द्रेण पुनः रेचयेत्। पूरकं रेचकं कृत्वा वेगेन तु न चालयेत्। एवम् अभ्यासयोगेन कफदोषम् निवारयेत्।

पदार्थः- (इडया वायुम् पूरयेत्) बायीं नासिका से वायु को लेवे, (पुनः) फिर (पिङ्गला रेचयेत्) दाहिनी नासिका से रेचक करे, (पुनः) फिर (पिङ्गलया पूरयेत्) दाहिनी नाक से भरे (चन्द्रेण रेचयेत्) बायें से रेचक करे। (पूरकं रेचकं कृत्वा) पूरक और रेचक करके (वेगेन तु) वेगपूर्वक (न चालयेत्) न चलाये (एवम् अभ्यासयोगेन) इस योगाभ्यास से (कफदोषं निवारयेत्) कफ सम्बन्धी रोगों की संभावना को भी दूर करे।

भावार्थः- वातक्रमभालभाति के लिए बाँयी नासिका से वायु को पेट में भरकर दाहिनी नाक से निकाले फिर दाहिनी नाक से वायु पेट में भरकर बायीं नाक से निकाले, इस क्रिया को अधिक वेग से न

करे। इसके अभ्यास से शरीर में कफसम्बन्धी रोग नहीं होते हैं, यदि हैं तो दूर हो जाते हैं।

व्युत्क्रमः-

नासाभ्यां जलमाकृष्य पुनर्वक्त्रेण **रेचयेत्।**
पायं पायं व्युत्क्रमेण श्लेष्मदोषं निवारयेत्।।60।।

अन्वयः- नासाभ्याम् जलम् आकृष्य वक्त्रेण पुनः रेचयेत्, व्युत्क्रमेण जलम् पायम् पायम् श्लेष्मदोषम् निवारयेत्।

पदार्थः- (नासाभ्याम्) नासिका के दोनों मार्गों से (जलम् आकृष्य) जल को अन्दर लेकर (पुनः) फिर (वक्त्रेण) मुख से (रेचयेत्) निकाले (व्युत्क्रमेण पायम् पायम्) विपरीत विधि से पानी पी-पीकर निकाले (श्लेश्मदोषम् निवारयेत्) यह व्युत्क्रमभालभाति कफदोषों को दूर करती है।

भावार्थः- व्युत्क्रम कपालभाति करने के लिए दोनों नासिका छिद्रों से पानी अन्दर लेकर मुख से निकाले ऐसा बार-बार करे (क्योंकि मुख से पानी पिया जाता है, किन्तु यह उल्टा निकाला जाता है, अतः इसे व्युत्क्रम कहा गया है) इसके अभ्यास से कफ सम्बन्धी रोग दूर होते हैं।

शीत्कृत्य **पीत्वा वक्त्रेण** नासानालैःविरेचयेत्।
एवमभ्यासयोगेन कामदेवसमो **भवेत्।।61।।**
न जायते च वार्द्धक्यं जरानैव प्रजायते।
भवेत्स्वच्छन्ददेहश्च कफदोषं निवारयेत्।।62।।

अन्वयः- वक्त्रेण शीत्कृत्य पीत्वा नासानालैः विरेचयेत् एवम् अभ्यासयोगेन कामदेवसमः भवेत्, कफदोषम् निवारयेत्।

पदार्थः- (वक्त्रेण) मुख से (शीत्कृत्य) शीत् ध्वनि करते हुए जल को (पीत्वा) पी करके (नासानालैः) नासिका के छिद्रों से (विरेचयेत्) निकाले (एवम् अभ्यासयोगेन) इसप्रकार अभ्यास से योगी (कामदेवसमः भवेत्) कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है

(वार्द्धक्यम् च न जायते) वृद्धावस्था नहीं आती (जरा न-एव प्रजायते) शरीर जीर्ण नहीं होता है (स्वच्छन्ददेहश्च भवेत्) शरीरपूर्णतया साधक के आधीन रहता है (कफदोषम् निवारयेत्) कफ सम्बन्धी विकारों को दूर रखता है।

भावार्थः- शी-शी ध्वनि के साथ मुख से पानी पी करके नाक के छिद्र से निकाले। इस योग के अभ्यास से साधक कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है। उसके पास वृद्धावस्था नहीं आती, शरीर जीर्ण नहीं होता और सदा स्वस्थ रहता है, कफ विकार कभी नहीं होते।

इति श्रीघेरण्डसंहितायां महर्षिघेरण्डनृपचण्डकापालिकसंवादे षट्कर्मसाधनं नाम प्रथमोपदेशः।।

यह श्रीघेरण्डसंहिता में महर्षि घेरण्ड और राजा चण्ड कापालिक के संवाद में षट्कर्म साधन नामक प्रथम उपदेश पूर्ण हुआ।

द्वितीयोपदेशः

अथ आसनविधिः

आसनानि समस्तानि यावन्तो जीवजन्तवः।
चतुरशीतिलक्षाणि शिवनाभिहितानि च।।1।।
तेषाम्मध्ये विशिष्टानि षोडशोनं शतं कृतम्।
तेषां मध्ये मर्त्यलोके द्वात्रिंशदासनं शुभम्।।2।।

अन्वयः- यावन्तः जीवजन्तवः (तावन्तः) समस्तानि आसनानि, शिवेन च चतुरशीतिलक्षाणि अभिहितानि, तेषाम् मध्ये षोडशोनम् शतम् कृतम्, मर्त्यलोके तेषां मध्ये द्वात्रिंशत् आसनम् शुभम्।

पदार्थः- (यावन्तः जीव-जन्तवः) जितने जीवजन्तु होते हैं, उतने (समस्तानि आसनानि) सम्पूर्ण आसन होते हैं, (शिवेन) भगवान् शिव ने (चतुरशीतिलक्षाणि) चौरासीलाख आसन (अभिहितानि) बताये हैं, (तेषाम् मध्ये) उनमें (विशिष्टानि) विशेष (षोडशोनशतम्) सोलह कम सौ अर्थात् चौरासी (कृतम्) कर दिये गये हैं (तेषाम् मध्ये) उनमें (मर्त्यलोके) संसार में (द्वात्रिंशत् आसनम्) बत्तीस आसन (शुभम्) अधिक शुभ अर्थात् उपयोगी हैं।

भावार्थः- आसन तो उतने हैं जितने जीवजन्तु, किन्तु शिवजी ने चौरासी लाख आसन बताये हैं। उनमें सोलह कम सौ अर्थात् चौरासी मुख्य माने गये हैं, संसारिक जनसामान्य केलिए उनमें भी बत्तीस अधिक उपयोगी हैं।

सिद्धं पद्मं तथा भद्रं मुक्तं वज्रं च स्वस्तिकम्।
सिंहं च गोमुखं वीरं धनुरासनमेव च।।3।।
मृतं गुप्तं तथा मत्स्यं मत्स्येन्द्रासनमेव च।
गोरक्षं पश्चिमोत्तानं संकटं शकटं तथा।।4।।
मयूरं कुक्कुटं कूर्मं तथा चोत्तानकूर्मकम्।

उत्तानमण्डूकं वृक्षं मण्डूकं गरुडं वृषभ्।।5।।
शलभं मकरं चोष्ट्रं भुजङ्गं च योगासनम्।
द्वात्रिंशदासनानि तु मर्त्यलोके च सिद्धिदम्।।6।।

अन्वयः- सिद्धम् पद्मम् भद्रम् मुक्तम् वज्रम् स्वस्तिकम् सिंहम् गोमुखम् वीरम् धनुःआसनम् मृतम् गुप्तम् मत्स्यम् मत्स्येन्द्रासनम् गोरक्षम् पश्चिमोत्तानम् संकटम् शकटम् मयूरम् कुक्कुटम् कूर्मम् उत्तानकूर्मकम् उत्तानमण्डूकम् वृक्षम् मण्डूकम् गरुडम् वृषम् शलभम् मकरम् उष्ट्रम् भुजङ्गम् योगासनम् मर्त्यलोके (इमानि) द्वात्रिंशत् आसनानि (इति) सिद्धिदम्।

पदार्थः- (सिद्धम्) सिद्धासन (पद्मम्) पद्मासन (भद्रम्) भद्रासन (मुक्तम्) मुक्तासन (वज्रम्) वज्रासन (स्वतिकम्) स्वस्तिकासन (सिंहम्) सिंहासन (गोमुखम्) गोमुखासन (वीरम्) वीरासन (धनुः) धनुरासन (मृतम्) शवासन (गुप्तम्) गुप्तासन (मत्स्यम्) मत्स्यासन (मत्स्येन्द्रासनम्) मत्स्येन्द्रासन (गोरक्षम्) गोरक्षासन (पश्चिमोत्तानम्) पश्चिमोत्तान आसन (संकटम्) संकटासन (शकटम्) शकटासन (मयूरम्) मयूरासन (कुक्कुटम्) कुक्कुटासन (कूर्मम्) कूर्मासन (उत्तानकूर्मम्) उत्तान कूर्मासन (उत्तानमण्डूकम्) उत्तान मण्डूकासन (वृक्षम्) वृक्षासन (मण्डूकम्) मण्डूकासन (गरुडम्) गरुडासन (वृषम्) वृषासन (शलभम्) शलभासन (मकरम्) मकरासन (उष्ट्रम्) उष्ट्रासन (भुजङ्गम्) भुजङ्गासन (योगासनम्) योगासन ये (द्वात्रिंशत्) बत्तीस (आसनानि सिद्धिदम्) प्रमुख आसन सिद्धि देने वाले हैं।

भावार्थः- मनुष्यों के लिए मुख्य कल्याणकारी निम्नलिखित बत्तीस आसन हैं—सिद्धासन, पद्मासन, भद्रासन, मुक्तासन, वज्रासन, स्वस्तिकासन, सिंहासन, गोमुखासन, वीरासन, धनुरासन, शवासन, गुप्तासन, मत्स्यासन, मत्स्येन्द्रासन, गोरक्षासन, पश्चिमोत्तानासन, संकटासन, शकटासन, मयूरासन, कुक्कुटासन, कूर्मासन, उत्तानकूर्मासन, मण्डूकासन, उत्तानमण्डूकासन, वृक्षासन, गरुडासन, वृषासन, शलभासन, मकरासन, उष्ट्रासन, भुजङ्गासन और योगासन।

सिद्धासनः-

योनिस्थानकमंघ्रिमूलघटिकं सम्पीड्य गुल्फेतरम्।
मेढ्रे सम्प्रणिधाय तं तु चिबुकं कृत्वा हृदि स्थायिनम्।
स्थाणुःसंयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्यन्भ्रुवोरन्तरम्।
मोक्षं चैव विधीयते फलकरं सिद्धासनम्प्रोच्यते।।7।।

अन्वयः-अंघ्रिमूलघटिकम् योनिस्थानम् सम्पीड्य गुल्फेतरम् मेढ्रे संप्रणिधाय तम् चिबुकम् तु हृदि स्थायिनम् कृत्वा स्थाणुः संयमित-इन्द्रियः अचलदृशा भ्रुवोः अन्तरम् पश्यन् मोक्षफलकरम् च सिद्धासनम् एव प्रोच्यते।

पदार्थः- (अंघ्रिमूलघटिकम्) पैर का मूल अर्थात् एड़ी से युक्त (योनिस्थानम् सम्पीड्य) योनिस्थान को दबाकर (गुल्फ-इतरम्) दूसरी एड़ी को (मेढ्रे सम्प्रणिधाय) लिङ्ग के ऊपर भलीप्रकार रखकर (तम् चिबुकम्) ठुड्ढी को (हृदि स्थायिनम् कृत्वा) वक्षस्थल पर स्थिर करके (स्थाणुः) पूर्ण स्थिर (संयमित-इन्द्रिय) स्थिर इन्द्रिय वाला होकर (अचलदृशा) स्थिर नेत्रों से (भ्रुवोःअन्तरम् पश्यन्) भौंहों के मध्य में देखते हुए बैठना (मोक्षफलकम्) मोक्षरूप फल देने वाला (सिद्धासनम् प्रोच्यते) सिद्धासन कहलाता है।

भावार्थः- सिंहासन करने के लिए एक पैर की एड़ी इस प्रकार रखे कि योनि दबे और दूसरे पैर की एड़ी को लिङ्ग के ऊपर रखे ठुड्ढी को वक्षस्थल पर भलीप्रकार स्थिर करके इन्द्रियों को स्थिर अर्थात् विषयों से रहित करे एवं पूर्ण स्थिर होकर निश्चल नेत्रों से भ्रूमध्य में देखे। यह स्थिति सिद्धासन की है। इसकी साधना का फल ग्रन्थकार के अनुसार मोक्षप्राप्ति है।

पद्मासनः-

वामोरूपरि दक्षिणं हि चरणं संस्थाप्य वामं तथा।
दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना कृत्वा कराभ्यां दृढम्।
अङ्गुष्ठे, हृदये निधाय चिबुकम् नासाग्रमालोकयेत्
एतद् व्याधिविनाशकारणपरं पद्मासनं प्रोच्यते।।8।।

अन्वयः- वाम-उरु-उपरि दक्षिणम् चरणम् संस्थाप्य तथा दक्ष-ऊरु-उपरि वामम् (संस्थाप्य) पश्चिमेन विधिना कराभ्याम् अङ्गुष्ठे दृढम् कृत्वा हृदये चिबुकम् निधाय नासाग्रम् अवलोकयेत् एतत् परम् व्याधिविनाशकारणम् पद्मासनम् प्रोच्यते।

पदार्थः- (वाम-ऊरु-उपरि) बायीं जंघा के ऊपर (दक्षिणम् चरणम्) दाहिने पैर को (संस्थाप्य) रख करके (दक्ष-ऊरु-उपरि) दाहिनी जांघ पर (वामम् संस्थाप्य) बायें पैर को रखकर (पश्चिमेन विधिना) पीछे की ओर से (कराभ्याम्) दोनों हाथों से (अङ्गुष्ठे दृढम् कृत्वा) दोनों अंगूठों को कसकर पकड़कर (हृदये चिबुकम् निधाय) वक्षस्थल पर ठुड्ढी लगाकर (नासाग्रम् अवलोकयेत्) नासिका के अग्रभाग को देखे (एतत्) यह (परम् व्याधिविनाशकारणम्) रोगों का अतिशय विनाशक (पद्मासनम् प्रोच्यते) पद्मासन कहा जाता है।

भावार्थः- बायीं जांघ पर दाहिने पैर को और दाहिनी जांघ पर बायें पैर को रखकर दोनों हाथों को पीछे से ले जाकर दोनों पैर को अंगूठों को कसकर पकड़े फिर ठुड्ढी को वक्षस्थल पर लगाकर नासिका के अग्रभाग को एकाग्रचित्त से देखे। यह पद्मासन कहा जाता है इसके अभ्यास से अनेक रोग निश्चित ही दूर हो जाते हैं। (अन्य परम्परा में इसे बद्ध पद्मासन कहते हैं)।

भद्रासनः-

गुल्फौ तु वृषणस्याधो व्युत्क्रमेण समाहितः।
पादाङ्गुष्ठौ कराभ्यां च धृत्वा तु पृष्ठदेशतः।।9।।
जालन्धरं समासाद्य नासाग्रमवलोकयेत्।
भद्रासनम्भवेदेतत् सर्वव्याधिविनाशनम्।।10।।

अन्वयः- गुल्फौ व्युत्क्रमेण वृषणस्य अधः (कृत्वा) पृष्ठदेशतः कराभ्याम् पादाङ्गुष्ठौ धृत्वा जालन्धरम् समासाद्य समाहितः नासाग्रम् अवलोकयेत्। एतत् सर्वव्याधिविनाशनम् भद्रासनम् भवेत्।

पदार्थः- (गुल्फौ) पैरों की दोनों एड़ियों को (वृषणस्य अधः) अण्डकोश के नीचे (व्युत्क्रमेण) उलटा करके अर्थात् पंजे पीछे की

ओर करके (पृष्ठदेशतः) पीछे की ओर से (कराभ्याम्) दोनों हाथों से (पादाङ्गुष्ठौ) पैर के दोनों अंगूठों को (धृत्वा) पकड़कर (जालन्धरम् समासाद्य) जालन्धरबंध लगाकर (समाहितः) एकाग्रचित्त होकर (नासाग्रम्) नासिका के अग्रभाग को (अवलोकयेत्) देखे। (एतत्) यह (सर्वव्याधिविनाशनम्) सभी रोगों को नष्ट करने वाला भद्रासनम् भवेत्।

भावार्थः- भद्रासन में आने के लिए पञ्जों को पीछे की ओर करके एड़ियों को अण्डकोश के नीचे करके बैठे, हाथों को पीछे ले जाकर पैर के अंगूठों को पकड़े तथा जालन्धरबन्ध लगाकर एकाग्र होकर नासिका के अग्र भाग को देखे। इस भद्रासन के करने से सभी रोग शरीर से दूर हो जाते हैं।

मुक्तासनः-

पायुमूले वामगुल्फं दक्षगुल्फं **तथोपरि।**
शिरोग्रीवासमं **कार्यं** मुक्तासनं **तु** सिद्धिदम्।।11।।

अन्वयः- पायुमूले वामगुल्फम् तथा (तत्) उपरि दक्षगुल्फम् (कृत्वा) शिरोग्रीवासमम् कार्यम् (इदम्) सिद्धिदम् मुक्तासनम्।

पदार्थः- (पायुमूले) गुदा के मूल में (वामगुल्फम्) बायीं एड़ी को (तथा-उपरि) और उसके ऊपर (दक्षगुल्फम्) दाहिनी एड़ी को करके (शिरोग्रीवासमम् कार्यम्) गर्दन और शिर को एक सीध में करके बैठे। यह (सिद्धिदम् मुक्तासनम्) सिद्धियाँ प्रदान करने वाला मुक्तासन है।

भावार्थः- मुक्तासन के लिए पहले गुदामूल के नीचे बायीं एड़ी को रखे और उसके ऊपर दाहिनी एड़ी को रखे, शिरगर्दन सीधे रहें। यह मुक्तासन अनेक सिद्धियाँ प्रदान करता है।

वज्रासनः-

जंघाभ्यां वज्रवत्कृत्वा गुदपार्श्वे **पदावुभौ।**
वज्रासनम्भवेदेतद् **योगिनां** सिद्धिदायकम्।।12।।

अन्वयः- जंघाभ्याम् गुदपार्श्वे वज्रवत् उभौ पदौ कृत्वा (उपविशेत्) एतत् सिद्धिदायकम् वज्रासनम् योगिनाम् भवेत्।

पदार्थः- (जंघाभ्याम् गुदपार्श्वे) जांघों सहित गुदा के समीप (वज्रवत्) वज्र के समान दृढ़तापूर्वक (उभौ पदौ कृत्वा) दोनों पैरों को रखकर बैठे। (एतत्) यह (सिद्धिदायकम्) सिद्धिप्रदान करने वाला (वज्रासनम्) वज्रासन (योगिनाम् भवेत्) योगियों का होता है।

भावार्थः- घुटनों को मोड़कर जांघों से पैर के भाग स्पर्श करें और एड़ियाँ गुदा के पास दोनों ओर हों, इस प्रकार वज्र के समान दृढ़ता पूर्वक योगियों का बैठना वज्रासन है, इससे सिद्धियाँ मिलती हैं।

स्वस्तिकासनः-

जानूर्वोरन्तरे कृत्वा योगी पादतले उभे।
ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकन्तत्प्रचक्षते।।13।।

अन्वयः- योगी उभे पादतले जानु ऊर्वोः अन्तरे कृत्वा ऋजुकायः समासीनः (स्यात्) तत् स्वस्तिकम् प्रचक्षते।

पदार्थः- (योगी) योग का साधक (उभे पादतले) पैर के दोनों नीचे के अंश (जानु ऊर्वोः) घुटने और जांघों के (अन्तरे) मध्य में (कृत्वा) करके (ऋजुकायः समासीनः) तनावरहित होकर बैठे (तत् स्वस्तिकम् प्रचक्षते) उसे स्वस्तिकासन कहते हैं।

भावार्थः- योगी जब जंघा और घुटने के मध्य पैर के नीचे के भाग को करके बैठता है तो उसे स्वस्तिकासन कहते हैं।

सिंहासनः-

गुल्फौ च वृषणस्याधः व्युत्क्रमेणोर्ध्वतां गतौ।
चितिमूलं भूमिसंस्थं कृत्वा च जानुनोपरे।।14।।
व्यात-वक्त्री जलन्ध्रञ्च नासाग्रमवलोकयेत्।
सिंहासनम्भवेदेतत् सर्वव्याधिविनाशनम्।।15।।

अन्वयः- व्युत्क्रमेण ऊर्ध्वताम् गतौ गुल्फौ वृषणस्य अधः चितिमूलं भूमिसंस्थं जानुनी च परे कृत्वा व्यस्तवक्त्री जलन्ध्रम् च कृत्वा नासाग्रमवलोकयेत् एतत् सर्वव्याधिविनाशनम् सिंहासनम् भवेत्।

पदार्थः- (व्युत्क्रमेण ऊर्ध्वताम् गतौ) उलटकर रखने से ऊपर की ओर हुई (गुल्फौ) दोनों एड़ियों को (वृषणस्य अधः) अण्डकोश के नीचे (चितिमूलं भूमिसंस्थं) घुटने के मूल को भूमि पर स्थित (जानुनी च परे कृत्वा) घुटनों को परस्पर दूर करके (व्यात्तवक्त्री) मुख को फैलाया हुआ रखे (जलन्ध्रम् च) और जालन्धरबन्ध भी लगाकर (नासाग्रम् अवलोकयेत्) नासिका के अग्रभाग को देखे। (एतत्) यह (सर्वव्याधिविनाशनम्) सभी रोगों को दूर करने वाला (सिंहासनम् भवेत्) सिंहासन होता है।

भावार्थः- पैरों का इस प्रकार उल्टा करे कि दोनों एड़ियाँ ऊपर होकर अण्डकोश के नीचे स्थिर हों और घुटने के मूल भूमि पर स्थित हों मुख पूरा फैलाए जालन्धरबन्ध लगाकर नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि स्थिर करके परम्परा के अनुसार जिह्वा को अधिक से अधिक बाहर निकाले यह सिंहासन की स्थिति है। इस आसन के प्रभाव से सभी रोग दूर रहते हैं।

गोमुखासनः-

पादौ च भूमौ संस्थाप्य पृष्ठपार्श्वे निवेशयेत्।
स्थिरकायं **समासाद्य** गोमुखम् गोमुखाकृतिः।।14।।

अन्वयः- पादौ भूमौ संस्थाप्य पृष्ठपार्श्वे निवेशयेत्, स्थिरकायम् **समासाद्य गोमुख-आकृतिः** गोमुखासनम् **भवेत्।**

पदार्थः- (पादौ भूमौ संस्थाप्य) दोनों पैरों को भूमि पर रखकर (पृष्ठपार्श्वे निवेशयेत्) पीठ की दोनों बगल में रखे (स्थिरकायम् समासाद्य) शरीर को स्थिर करके (गोमुख-आकृतिः) गौ के मुख की भाँति आकृति बनेगी (गोमुखासनम् भवेत्) यह गोमुखासन होता है।

भावार्थः- पैरों को भूमि पर रखते हुए पीठ के बगल में स्थापित करे और स्थिरतापूर्वक बैठे। गोमुख जैसी आकृति बनती है, इसलिए इसे गोमुखासन कहते हैं। यह लक्षण पूर्ण स्पष्ट नहीं है अतः स्पष्टतः के लिए त्रिशिखि ब्राह्मण उपनिषद् में प्राप्त इस आसन का लक्षण द्रष्टव्य है—

"सव्ये दक्षिण गुल्फन्तु पृष्ठपार्श्वे नियोजयेत्
दक्षिणेऽपि तथा सव्यं गोमुखं गोमुखम् **यथा।।16।।"**

अर्थात् बायें पृष्ठपार्श्व में दाहिने पैर की एड़ी को और दाहिने पृष्ठपार्श्व में बायें पैर की एड़ी स्थिर करे गोमुख की आकृति होने से इसे गोमुखासन कहते हैं। उपर्युक्त प्रकार से पैरों की एड़ियाँ रखने पर बायें घुटने पर दाहिना घुटना होगा जिसकी आकृति गोमुख की भाँति बनती है। परम्परा में एक हाथ पीठ के नीचे की ओर से दूसरे हाथ के बाहुमूल तक लेजाकर और दूसरे हाथ को ऊपर से लेजाकर एक हाथ की अंगुलियों को दूसरे हाथ की अंगुलियों से पकड़ते या मोड़कर फँसाते हैं।

वीरासनः-

एकपादमथैवास्मिन् विन्यसेदूरुसंस्थिरम्।
इतरस्मिंस्तथा पश्चाद् वीरासनमितीरितम्।।17।।

अन्वयः- एकम् पादम् एकस्मिन् ऊरुसंस्थितम् **विन्यसेत् तथा** इतरस्मिन् पश्चाद् (विन्यसेत्) इति वीरासनम् **ईरितम्।**

पदार्थः- (एकम् पादम्) एक पैर को (एकस्मिन् ऊरु संस्थिरम्) एक जंघा पर स्थिर करे (तथा इतरस्मिन्) अन्य पैर पर (पश्चात्) शरीर के नितम्ब को रखे (इति वीरासनम् ईरितम्) इसे वीरासन कहा गया है।

भावार्थः- एक पैर को पीछे की ओर करके बैठे और दूसरे पैर को पूर्व पैर की जंघा पर रखे यह वीरासन कहलाता है।

प्रसार्य पादौ भुविदण्डरूपौ **करौ च पृष्ठे** धृतपादयुग्मम्।
कृत्वा धनुस्तुल्यपरीवृताङ्गं निधाययोगी **धनुरासनम् तत्।।10।।**

अन्वयः- भुवि दण्डरूपौ पादौ प्रसार्य **पृष्ठे च करौ** धृतपादयुग्मम् परीवृत-अङ्गकृत्वा योगी निधाय तत् धनुरासनम्।

पदार्थः- (भुवि) भूमि पर (दण्डरूपौ पादौ प्रसार्य) डण्डे के समान पैरों को फैलाकर (पृष्ठे च) और पीछे (करौ धृतपादयुग्मम्) दोनों हाथों से पैरों को पकड़े (धनुस्तुल्य-परिवर्त्तिताङ्गम् कृत्वा) पीठ

की ओर से शरीर को धनुष् के समान करके (योगी निधाय) योगी स्थिर हो (तत् धनुरासनम्) वह धनुरासन है।

भावार्थः- भूमि पर पेट के वल लेटें, पैरों को डण्ड के समान फैलाएँ फिर घुटने से मोड़कर हाथों से पकड़े और अधिक से अधिक खींचे ऐसा करने से शरीर का आगे अर्थात् शिर वक्षस्थल और पीछे का भाग घुटनें और जांघें उठ जाएँगी, शरीर के धनुषाकार होने से इस आसन को धनुरासन कहते हैं।

मृतासन (शवासन):-

उत्तानशववद् भूमौ शयनन्तु शवासनम्।
शवासनम् श्रमहरं चित्तविश्रान्तिकारकम्।।19।।

अन्वयः- उत्तानशववद् भूमौ शयनम् तु शवासनम् (भवति) शवासनम् श्रमहरम् चित्तविश्रान्तिकारकम् (भवति)।

पदार्थः- (उत्तानशववद्) उत्तान अर्थात् छाती पेट को ऊपर रखकर (भूमौ) भूमि पर (शयनम्) लेटना (शवासनम्) शवासन होता है। (शवासनम्) यह शवासन (श्रमहरम्) थकावट को दूर करता है (चित्तविश्रान्तिकारकम्) चित्त को विश्राम कराता है।

भावार्थः- पीठ के बल छाती और पेट को ऊपर करके भूमि पर लेटना शवासन कहलाता है। इससे थकावट मिटती है और चित्त को विश्राम मिलता है।

गुप्तासनः-

जानुनोरन्तरे पादौ कृत्वा पादौ तु गोपयेत्।
पादोपरि संस्थाप्य गुदं गुप्तासनं विदुः।।20।।

अन्वयः- पादौ जानुनोरन्तरे कृत्वा गुदम् च पादोपरिसंस्थाप्य पादौ गोपयेत् (इदम्) गुप्तासनम् विदुः।

पदार्थः- (पादौ) दोनों पैरों को (जानुनोः अन्तरे) जांघों के मध्य में अर्थात् नीचे करके (गुदम् च पाद-उपरि) और गुदा को पैर के ऊपर (संस्थाप्य) स्थिर करके (पादौ गोपयेत्) पैरों को छिपा ले

(गुप्तासनम्) इसे गुप्तासन (विदुः) जानते हैं अर्थात् विद्वान् लोग कहते हैं।

भावार्थः- पैरों को जांघों के पीछे रखकर और पैर पर गुदा को रखकर पैरों को छिपा ले, इसे गुप्तासन कहते हैं।

मत्स्यासनः-

मुक्तपद्मासनं कृत्वा उत्तानशयनं चरेत्।
कूर्पराभ्यां शिरोवेष्ट्य मत्स्यासनं तु रोगहा।।21।।

अन्वयः- मुक्तपद्मासनम् कृत्वा कूर्पराभ्याम् शिरोवेष्ट्य उत्तानशयनम् चरेत् (इदम्) मत्स्यासनम् रोगहा (अस्ति)।

पदार्थः- (मुक्त-पद्मासनम् कृत्वा) हाथों को पीछे ले जाकर अंगूठों को पकड़े बिना पद्म आठ में वर्णित विशेष विधि से पद्मासन करके (कूर्पराभ्याम्) दोनों कुहनियों से शिर को लपेटकर (उत्तानशयनम् चरेत्) उतान लेट जाये (मत्स्यासनम्) यह मत्स्यासन है (रोगहा) यह रोगों को दूर करता है।

भावार्थः- घेरण्ड ऋषि ने पद्मासन में हाथों को पीछे से ले जाकर पीछे से अंगूठे पकड़ने को पद्मासन कहा है, किन्तु हाथों से अंगूठों को न पकड़े तो उनके अनुसार वह मुक्तपद्मासन होगा इसे करके दोनों हाथों की कलाइयों से शिर को लपेट ले या शिर के नीचे रखे इसे रोगों को दूर करने वाला मत्स्यासन कहते हैं। परम्परा में हाथों की कुहनियों से शिर को लपेटने के स्थान पर पैर के अंगूठे पकड़े जाते हैं जो मछली के तैरने में सहायक पंख के प्रतिरूप बन जाते हैं।

प्रसार्यपादौ भुवि दण्डरूपौ
संन्यस्तभालश्चितियुग्ममध्ये।
यत्नेन पादौ च धृतौ कराभ्याम्
योगीन्द्रपीठं पश्चिमोत्तानमाहुः।।22।।

अन्वयः- भूवि दण्डरूपौ पादौ प्रसार्य चितियुग्ममध्ये संन्यस्तभालः कराभ्याम् यत्नेन पादौ च धृतौ योगीन्द्रपीठम् पश्चिमोत्तानम् आहुः।

पदार्थः- (भूवि) भूमि पर (दण्डरूपौ पादौ) डण्डे के समान दोनों पैरों को (प्रसार्य) फैलाकर (चिति युग्ममध्ये) दोनों घुटनों के बीच में (संन्यस्त भालः) माथा रखकर (कराभ्याम्) दोनों हाथों से (यत्नेन) प्रयत्नपूर्वक (पादौ च धृतौ) दोनों पैरों को पकड़े (योगीन्द्रपीठम्) यह श्रेष्ठ योगियों का पीठ अर्थात् आसन है, इसे (पश्चिमोत्तानम् आहुः) पश्चिमोत्तान आसन कहते हैं।

भावार्थः- पश्चिमोत्तान आसन के लिए दोनों पैरों को डण्ड के समान सीधे फैलाए फिर घुटनों के मध्य में शिर को लगाये और प्रयत्नपूर्वक हाथों से पैरों के पञ्जों को पकड़े। श्रेष्ठयोगी इस आसन को स्वीकार करते हैं अर्थात् इस आसन को अवश्य करते हैं।

उदरं पश्चिमाभासं **कृत्वा तिष्ठति यत्नतः।**
नम्राङ्गवामपादं दक्षजानूपरि **न्यसेत्।।23।।**
तत्र याम्यं कूर्परञ्च **याम्ये करे च** वक्त्रकम्।
भ्रुवोर्मध्ये **गतां दृष्टिं पीठं** मात्स्येन्द्रमुच्यते।।24।।

अन्वयः- उदरं यत्नतः पश्चिमाभासं कृत्वा नम्राङ्गवामपादम् दक्ष-जानु-उपरि न्यसेत्, तत्र याम्यम् कूर्परम् च यामे करे च वक्त्रकम् दृष्टिम् भ्रुवोः मध्यगताम् मात्स्येन्द्रम् पीठम् उच्यते।

पदार्थः- (उदरम्) पेट को (यत्नतः) प्रयत्नपूर्वक (पश्चिमा-भासम् कृत्वा) पीछे की ओर यथा सम्भव घुमाकर (नम्राङ्गम् वामपादम्) झुके हुए बायें पैर को (दक्षजानु-उपरि न्यसेत्) दाहिने घुटने पर रखे और वहाँ दायीं कुहनी को रखे (याम्येकरे च) और बायें हाथ पर (वक्त्रकम्) मुख को रखे (दृष्टिं भ्रुवोः मध्यगताम्) दृष्टि को भौहों के मध्य में स्थिर कर (मात्स्येन्द्रपीठम् उच्यते) इसे मात्स्येन्द्र आसन कहते हैं।

भावार्थः- पेट को पीछे की ओर प्रयत्नपूर्वक घुमाकर, बायें पैर को मोड़ करके दाहिने घुटने (या जंघा) पर रखे, वहाँ दायीं कुहनी रखकर बायें हाथ पर मुख को रखे तथा दृष्टि को भ्रूमध्य पर स्थिर करे यह मत्स्येन्द्र आसन कहलाता है। (यह लक्षण परम्परा में प्रचलित मत्स्येन्द्र आसन की दृष्टि से पूर्णतया अस्पष्ट है)।

गोरक्षासनः-

जानूर्वोरन्तरे पादावुत्तानाव्यक्तसंस्थितौ।
गुल्फौ चाच्छाद्य हस्ताभ्यामुत्तानाभ्यां **प्रयत्नतः।।25।।**
कण्ठसंकोचनं **कृत्वा** नासाग्रमवलोकयेत्।
गोरक्षासनमित्याहुः **योगिनां** सिद्धिकारकम्।।26।।

अन्वयः- जानु-उर्वोः अन्तरे उत्तानौ पादौ अव्यक्तसंस्थितौ (कृत्वा) उत्तानाभ्याम् हस्ताभ्याम् गुल्फौ आच्छाद्य कण्ठसंकोचनम् कृत्वा नासाग्रम् अवलोकयेत् (इदम्) योगिनाम् सिद्धिदायकम् गोरक्षासनम् आहुः।

पदार्थः- (जानु-उर्वो अन्तरे) घुटना और जांघों के अन्दर (उत्तानौ पादौ) तलवों को ऊपर किये हुए पैरों को (अव्यक्त संस्थितौ कृत्वा) इस प्रकार कि वे छिप जायें (उत्तानाभ्याम् हस्ताभ्याम्) हथेली ऊपर करके दोनों हाथों से (गुल्फौ आच्छाद्य) दोनों एड़ियों को ढँक करके (नासाग्रम्) नासिका के अग्रभाग को (अवलोकयेत्) देखे। इसे (योगिनां सिद्धिदायकम्) योगियों को सिद्धि देने वाला (गोरक्षासनम् आहुः) गोरक्षासन कहते हैं।

भावार्थः- पैर के तलवों को ऊपर करके उन्हें घुटने और जांघों के नीचे इस प्रकार रखे कि वे छिप जाए और हथेलियों को ऊपर करके उनसे एड़ियों को ढँक ले और नासिका के अग्रभाग को देखे, इसे गोरक्षासन कहते हैं, इसके अभ्यास से योगियों को सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

उत्कटासनः-

अङ्गुष्ठाभ्यामवष्टभ्य धरां गुल्फे च खेगतौ।
तत्रोपरि गुदं न्यस्य विज्ञेयमुत्कटासनम्।।27।।

अन्वयः- अङ्गुष्ठाभ्याम् धराम् अवष्टभ्य गुल्फे च खेगतौ, तत्र उपरि गुदम् न्यस्य उत्कटासनम् विज्ञेयम्।

पदार्थः- (अङ्गुष्ठाभ्याम्) पैर के दोनों अंगूठों को (धराम्) पृथिवी पर (अवष्टभ्य) स्थिर करके (गुल्फे च) और दोनों एड़ियों को (खे गतौ) ऊपर करके (तत्र-उपरि) उसके ऊपर (गुदम् न्यस्य) गुदा के स्थिर करने पर (उत्कटासन् विज्ञेयम्) उत्कटासन समझना चाहिए।

भावार्थः- पृथिवी पर दोनों पैरों के अंगूठों को स्थिर करके ऊपर उठाई हुई एड़ियों पर गुदा को स्थिर करे, इसे उत्कटासन कहते हैं।

संकटासनः-

वामपादं चितेर्मूलं **संन्यस्य** धरणीतले।
पाददण्डेन **याम्येन** वेष्टयेद्वामपादकम्।
जानुयुग्मे **करौ** युग्ममेतत्तु संकटासनम्।।28।।

अन्वयः- वामपादम् चितेः मूलम् धरणीतले संन्यस्य याम्येन पाददण्डेन वामपादम् वेष्टयेत् करौ जानुयुग्मे (न्यसेत्), एतत् तु संकटासनम्।

पदार्थः- (वामपादम्) बायें पैर को (चितेःमूलम्) घुटने के अग्रभाग को (धरणीतले) भूमि पर (संन्यस्य) रखकर (याम्येन पाददण्डेन) दाहिने पैर से (वामपादम्) बायें पैर को (वेष्टयेत्) लपेटे (करौ) दोनों हाथों को (जानुयुग्मे) दोनों घुटनों पर रखे (एतत् तु) यह (संकटासनम्) संकटासन है।

भावार्थः- बायें पैर और घुटने के अग्रभाग को भूमि पर रखकर दाहिने पैर से बायें पैर को लपेट कर घुटनों पर दोनों हाथों को रखे। इसे संकटासन कहते हैं।

मयूरासनः-

धरामवष्टभ्य करयोस्तलाभ्याम्
तत्कूपरे स्थापितनाभिपार्श्वम्।
उच्चासने दण्डवदुत्थितः **खे**
मायूरमेतत्प्रवदन्ति पीठम्।।29।।

अन्वयः- करयोः तलाभ्याम् धराम् अवष्टभ्य तत्कूपरि स्थापितनाभि- पार्श्वम् खे उच्चासने दण्डवत् उत्थितः एतत् मायूरम् पीठम् प्रवदन्ति।

पदार्थः- (करयोः तलाभ्याम्) दोनों हाथों की हथेली से (धराम् अवष्टभ्य) पृथिवी को पकड़ करके (तत्कूपरि) उनके कुहनियों पर (स्थापितनाभिपार्श्वम्) नाभि के निकटस्थ भाग को स्थिर करके (खे उच्चासने) आकाश में ऊपर (दण्डवत् उत्थितः) डण्डे के समान उठा होना (एतत् मायूरम् पीठम्) इसे मयूर आसन (प्रवदन्ति) कहते हैं।

भावार्थः- दोनों हाथों की हथेलियों को भूमि पर टिकाकर हाथों की कुहनियों पर नाभि के निकट का पेट का भाग स्थिर करके पैर से शिर तक का सम्पूर्ण भाग डण्डे के समानान्तर विल्कुल सीधा आकाश में स्थिर करे, इसे मयूरासन कहते हैं।

कुक्कुटासनः-

पद्मासनं समासाद्य जानूर्वोरन्तरे **करौ।**
कूर्पराभ्यां समासीनो **मञ्चस्थः** कुक्कुटासनम्।।30।।

अन्वयः- पद्मासनं समासीनः करौ जानु-ऊर्वोः अन्तरे (कृत्वा) मञ्चस्थ (इव) कूर्पराभ्याम् समासीनो (एतत्) कुक्कुटासनम्।

पदार्थः- (पद्मासनम् समासाद्य) पद्मासन लगा करके (करौ जानु-उर्वोः अन्तरे) दोनों हाथों को जांघ और पिण्डलियों के मध्य में ले जाकर (मञ्चस्थ) जैसे कोई मञ्च अर्थात् स्टूल पर बैठता है उस तरह (समासीनः) स्थित होना (कुक्कुटासनम्) कुक्कुटासन है।

भावार्थः- पद्मासन लगाकर जंघा और पिण्डलियों के बीच हाथ डालकर पूरे शरीर को कुहनियाँ तक उठाकर स्थिर होना कुक्कुटासन कहलाता है।

कूर्मासनः-

गुल्फौ तु वृषणस्याधः व्युत्क्रमेण समाहितौ।
ऋजुकायशिरोग्रीवं कूर्मासनमितीरितम्।।31।।

अन्वयः- व्युत्क्रमेण समाहितौ गुल्फौ वृषणस्य अधः (संस्थाप्य) ऋजुकायशिरोग्रीवम् (भवेत् एतत्) कूर्मासनम् ईरितम्।

पदार्थः- (व्युत्क्रमेण) पैरों को उलटकर (समाहितौ गुल्फौ) मिली हुई एड़ियों को (वृषणस्य अधः) अण्डकोश के नीचे रखे, (ऋजुकायशिरोग्रीवम्) शरीर शिर और ग्रीवा को आगे झुकाकर स्थिर हो इसे (कूर्मासनम् ईरितम्) कूर्मासन कहते हैं।

भावार्थः- पञ्जों को बाहर की ओर करके एड़ियों को मिलाकर अण्डकोशों के नीचे रखकर बैठे और शिरगर्दन तथा शरीर को आगे झुकाये और स्थिर हो इस स्थिति को कूर्मासन कहते हैं।

उत्तानकूर्मासनः-

कुक्कुटासनबन्धस्थं कूर्पराभ्यां धृतकन्धरम्।
पीठं कूर्मवदुत्तानमेतदुत्तानकूर्मकम्।।32।।

अन्वयः- कुक्कुटासनबन्धस्थम् कूर्पराभ्यां धृतकन्धरम् कूर्मवद् उत्तानम् (भवेत्) एतत् पीठम् उत्तानकूर्मकम् (भवति)।

पदार्थः- (कुक्कुटासनबन्धस्थम्) कुक्कुटासन लगाकर उसमें स्थित (कूर्पराभ्याम्) दोनों कलाइयों से (धृतकन्धरम्) ग्रीवा को या कन्धों को पकड़कर (कूर्मवत् उत्तानम्) कछुए की भाँति उतान होवे (एतत् पीठम्) यह आसन (उत्तानकूर्मकम्) उत्तानकूर्म है।

भावार्थः- कुक्कुटासन लगाकर कलाइयों से कन्धे या ग्रीवा पकड़े और पीठ के बल उतान हो जाए यह उत्तानकूर्म आसन है।

उत्तानमण्डूकासनः-

मण्डूकासनमध्यस्थं कूर्पराभ्यां **धृतशिरः।**
एतद् भेकवदुत्तानमेतदुत्तान मण्डुकम्।।33।।

अन्वयः- मण्डूकासनमध्यम् कूर्पराभ्यां शिरः धृतम् भेकवत् उत्तानम् एतत् उत्तानमण्डुकम्।

पदार्थः- (मण्डूकासनमध्यस्थम्) मण्डूकासन में स्थित हो (कूर्पराभ्याम्) हथेलियों से (शिरः धृतम्) शिर को पकड़े (भेकवत्

उत्तानम्) मेढक की भाँति उत्तान हो (एतत् उत्तानमण्डुकम्) यह उत्तानमण्डूक आसन है।

भावार्थः- मण्डूक आसन लगाकर हथेलियों से शिर को पकड़े और मेढक की भाँति उत्तान लेटे तो यह उत्तानमण्डूकासन होगा।

वृक्षासनः-

वामोरुमूलदेशे च याम्यं पादं निधाय तु।
तिष्ठेत्तु वृक्षवद् भूमौ वृक्षासनमिदं विदुः।।34।।

अन्वयः- वाम-ऊरुमूलदेशे याम्यम् पादम् तु निधाय भूमौ वृक्षवत् तिष्ठेत् इदम् वृक्षासनम् विदुः।

पदार्थः- (वाम-ऊरुमूलदेशे) बायीं जंघा के मूल स्थान पर (याम्यम् पादम्) दाहिने पैर को रखकर (भूमौ) भूमि पर (वृक्षवत्) पेड़ के समान (तिष्ठेत्) खड़ा होवे (इदम्) इसको (वृक्षासनम् विदुः) वृक्षासन कहा जाता है।

भावार्थः- बायीं जंघा के मूल में दाहिने पैर को रखकर भूमि पर एक पैर से वृक्ष की भाँति खड़ा होवे, इसे वृक्षासन कहते हैं।

मण्डूकासनः-

पृष्ठदेशे पादतलौ अङ्गुष्ठे द्वे च संस्पृशेत्।
जानुयुग्मं पुरस्कृत्य साधयेन्मण्डुकासनम्।।35।।

अन्वयः- जानुयुग्मम् पुरस्कृत्य पादतलौ पृष्ठदेशे (तथा कुर्यात् यथा) द्वे अङ्गुष्ठे संस्पृशेत् (एवम्) मण्डूकासनम् साधयेत्।

पदार्थः- (जानुयुग्मम्) दोनों घुटनों को (पुरस्कृत्य) आगे करके (पादतलौ) दोनों पैर के तलवों को इस प्रकार (पृष्ठदेशे) पीछे की ओर करे कि (द्वे अङ्गुष्ठे संस्पृशेत्) दोनों अंगूठे स्पर्श करें इस प्रकार (मण्डुकासनम् साधयेत्) मण्डूकासन सिद्ध करे।

भावार्थः- दोनों घुटनों को आगे रखते हुए दोनों पैर के तलवों को पीछे की ओर इसप्रकार रखे कि दो अंगूठे स्पर्श करें इस स्थिति में वक्षस्थल को आगे की ओर झुकाएँ यह मण्डूकासन है।

गरुडासनः-

जंघोरुभ्यां धराम्पीड्य स्थिरकायो द्वि जानुनी।
जानूपरि करं युग्मं गुरुडासनमुच्यते।।36।।

अन्वयः- जंघा-ऊरुभ्यां द्विजानुना धराम् सम्पीड्य जानु-उपरि करयुग्मम् (स्थापयेत् इदम्) गरुडासनम् उच्यते।

पदार्थः- (जघा-ऊरुभ्याम्) दोनों जंघाओं द्वारा (द्विजानुना) दोनों घुटने से (धरां सम्पीड्य) पृथिवी को दबाकर (जानु-उपरि) घुटनों के ऊपर (कर युग्मम्) दोनों हाथों को रखे (इदम् गरुडासनम्) यह गरुडासन कहलाता है।

भावार्थः- दोनों जांघो और घुटनों को भूमि पर टिकाये घुटने पर दोनों हाथों को रखे यह गरुडासन कहलाता है।

(**नोट-** विधि अस्पष्ट, परम्परा में प्रचलित से मेल नहीं)

वृषासनः-

याम्यगुल्फे **पायुमूलं वामभागे पदेतरम्।**
विपरीतं स्पृशेद् भूमिं वृषासनमिदं **भवेत्।।37।।**

अन्वयः- याम्यगुल्फे पायुमूलम् (न्यसेत्) विपरीतम् पद-इतरम् भूमिम् स्पृशेत् इदम् वृषासनम् भवेत्।

पदार्थः- (याम्यगुल्फे) दाहिनी एड़ी पर। (पायुमूलम्) गुदा को तथा (विपरीतं पद-इतरम्) मोड़ करके दूसरा पैर (भूमिम् स्पृशेत्) भूमि का स्पर्श करे, (इदम् वृषासनम् भवेत्) यह वृषासन होगा।

भावार्थः- दाहिने पैर की एड़ी पर गुदा को तथा दूसरे पैर को मोड़कर उससे भूमि को स्पर्श करे, इसे वृषासन कहते हैं।

शलभासनः-

आधास्य शेते करयुग्मवक्षः
भूमिमवष्टभ्य करयोस्तलाभ्याम्।

पादौ च शून्ये च वितस्ति चोर्ध्वम्
वदन्ति पीठं शलभं मुनीन्द्राः।।38।।

अन्वयः- करयुग्मवक्षः करयोः तलाभ्याम् भूमिम् अवष्टभ्य अधास्य शेते पादौ च शून्ये वितस्ति (मात्रम्) ऊर्ध्वम् (कुर्यात्) मुनीन्द्राः शलभम् पीठम् वदन्ति।

पदार्थः- (करयुग्मवक्षः) दोनों हाथों को वक्षस्थल पर किये हुए (करयोः तलाभ्याम्) दोनों हाथों की हथेलियों को भूमि पर रखकर (अध-आस्य) मुख को नीचे करके (शेते) लेटता है, (पादौ च) और दोनों पैरों को (शून्ये) आकाश में (वितस्तिमात्रम् ऊर्ध्वम्) वित्ताभर ऊपर करे, (मुनीन्द्राः) श्रेष्ठ मुनि लोग इसे (शलभम् पीठम्) शलभ आसन (वदन्ति) कहते हैं।

भावार्थः- दोनों हाथों को वक्षस्थल पर रखे हुए हथेलियों को भूमि पर टिकाकर पैरों को आकाश में वित्ताभर (बारह अंगुल) ऊपर उठाये इसे मुनिजन शलभासन कहते हैं।

मकरासनः-

अधास्य शेते हृदयं निधाय
भूमौ च पादौ तु प्रसार्यमाणौ।
शिरश्च धृत्वा करदण्डयुग्मे
देहाग्निकारम्मकरासनं **तत्।।39।।**

अन्वयः- हृदयम् भूमौ निधाय पादौ च भूमौ प्रसार्यमाणौ करदण्डयुग्मे शिरश्च धृत्वा अध-आस्यः शेते तत् देहाग्निकारम् मकरासनम्।

पदार्थः- (हृदयम् भूमौ निधाय) वक्षस्थल को भूमि पर रखकर (पादौ तु) और दोनों पैर (भूमौ प्रसार्यमाणौ) भूमि पर फैलाये हुए (करदण्डयुग्मे) दण्ड की भाँति उठे हुए हाथें की हथेली पर (शिरः धृत्वा) शिर रखकर स्थिर होना (तत्) वह (देहाग्निकारम्) देह की अग्नि को बढ़ाने वाला (मकरासनम्) मकरासन है।

भावार्थः- मकरासन करने के लिए वक्षस्थल को भूमि पर रखकर पैरों को भूमि पर फैलाये हुए उठे हुए दोनों हाथों की हथेली पर शिर रखकर मुख को नीचे किये हुए भूमि पर लेटते हैं। इस आसन के अभ्यास से शरीर की अग्नि अर्थात् जठराग्नि तीव्र होती है।

उष्ट्रासनः-

अधास्य शेते पादयुग्मव्यस्तम्
पृष्ठे निधायापि **धृतं** कराभ्याम्।
आकुञ्चयेत्सम्यगुदरास्यगाढं
उष्ट्रञ्चपीठं **मुनियो वदन्ति।।40।।**

अन्वयः- अध-आस्यः शेते पादयुग्मव्यस्तम् **पृष्ठे** निधाय कराभ्याम् धृतम् उदरास्यगाढम् **च** सम्यक् आकुञ्चयेत् **मुनयः** उष्ट्रम् पीठम् वदन्ति।

पदार्थः- (अधः आस्यः) मुख नीचे किये हुए (पादयुग्म् व्यस्तम्) अलग अलग दोनों पैरों को (पृष्ठे निधाय) पीछे की ओर करके (कराभ्याम् धृतम्) दोनों हाथों से पकड़े हुए (उदरास्यगाढम्) पेट को कसकर (सम्यक्) भलीप्रकार (आकुञ्चयेत्) सिकोड़े इस स्थिति को (मुनयः) मुनिजन (उष्ट्रम् पीठम् वदन्ति) उष्ट्रासन कहते हैं।

भावार्थः- मुख को नीचे किये हुए दोनों पैरों को अलग अलग किये हुए पीठ की ओर करके हाथों से पकड़ कर खींचते हुए पेट को अधिक से अधिक सिकोड़े। इस स्थिति को मुनिजन उष्ट्रासन कहते हैं।

भुजङ्गासनः-

अङ्गुष्ठं नाभिपर्यन्तमधो **भूमौ** विनिन्यसेत्।
करतलाभ्यां धरान्धृत्वा ऊर्ध्वशीर्षः **फणीव हि।।41।।**
देहाग्निर्वर्धते **नित्यं** सर्वरोगविनाशनम्
जागर्त्ति भुजगीदेवी साधनाद् भुजगासनम्।।42।।

अन्वयः- नाभिपर्यन्तम् **अङ्गुष्ठम्** भूमौ विन्यसेत् करतलाभ्याम् धराम् धृत्वा फणी **इव** ऊर्ध्वशीर्षः (भवेत् इदम्) भुजङ्गासनम्

सर्वरोगविनाशनम् नित्यम् साधनात् देहाग्निः वर्धते, भुजगी देवी जागर्ति।

पदार्थः- (नाभिपर्यन्तम्) नाभि के निकट (अङ्गुष्ठम्) अंगूठा करके हाथ को (भूमौ विन्यसेत्) भूमि पर रखे, (करतलाभ्याम्) हथेलियों से भूमि को पकड़कर अर्थात् हथेली को भूमि पर स्थिर करके (फणी इव) सर्प के समान (ऊर्ध्वशीर्षः) शिर को ऊपर उठाये (भुजङ्गासनम्) यह भुजङ्गासन है, (नित्यम् साधनात्) नित्य इसका अभ्यास करने से (सर्वरोगविनाशनम्) सभी रोग नष्ट होते हैं (देहाग्निः वर्धते) जठराग्नि बढ़ती है (भुजगीदेवी जागर्त्ति) कुण्डलिनीशक्ति जागृत होती है।

भावार्थः- भुजङ्गासन करने के लिए हाथों की हथेलियों को पृथिवी पर इस प्रकार स्थिर करे कि अंगूठे नाभि के निकट रहें फिर सर्प की भाँति शिर को उठाये। इस आसन को नित्य करने से शरीर की अग्नि बढ़ती है, सभी रोग नष्ट होते हैं और कुण्डलिनी-शक्ति जागृत होती है।

योगासनविधिः-

उत्तानौ चरणौ कृत्वा संस्थाप्य जानुनोपरि
आसनोपरि **संस्थाप्य उत्तानं** करयुग्मकम्।।43।।
पूरकैर्वायुमाकृष्य नासाग्रमवलोकयेत्।
योगासनं भवेदेतत् **योगिनां** योगसाधने।।44।।

अन्वयः- चरणौ उत्तानौ कृत्वा जानुनोपरि, आसनोपरि उत्तानम् करयुग्मकम् संस्थाप्य पूरकैः वायुम् आकृष्य नासाग्रम् अवलोकयेत् योगसाधने एतत् योगासनम् भवेत्।

पदार्थः- (चरणौ उत्तानौ कृत्वा) पैर के तलवों के ऊपर की ओर करके (जानुनो-उपरि) दोनों जांघों के ऊपर तथा (आसन-उपरि) इस आसन के ऊपर (उत्तानम् करयुग्मम्) हथेली ऊपर किये हुए दोनों हाथों को (संस्थाप्य) रखकरके (पूरकैः वायुम् आकृष्य) पूरक द्वारा वायु को अन्दर भरकर (नासाग्रम्) नाक के आगे के भाग को

(अवलोकयेत्) देखे, (योगिनाम् योगसाधने) योगियों की योगसाधना करने में (एतत्) यह (योगासनम् भवेत्) योग करने का आसन होता है।

भावार्थः- जैसे पद्मासन मे करते हैं उसी प्रकार पैरों के तलवों को ऊपर करके आसन के मध्य में अर्थात् दोनों एड़ियों के पास दोनों हाथों की हथेलियों को ऊपर करके पैरों पर रखे और पूरक के द्वारा प्राणवायु को अन्दर भरकर नासिका के अग्रभाग पर देखे। योगसाधना हेतु यह आसन सर्वोत्तम है इसलिए परम्परा में से योगासन कहा जाता है।

।।इति श्रीघेरण्डसंहितायाम् **ऋषि-घेरण्ड**-नृपचण्डकापालिसंवादे **द्वात्रिंश**-आसनवर्णनं **नाम** द्वितीयोपदेशः।।

।।श्रीघेरण्डसंहिता में ऋषिघेरण्ड और राजा चण्डकापालि के संवाद के रूप में बत्तीस आसनों के वर्णन नामक दूसरा उपदेश पूर्ण हुआ।।

अथ तृतीयोपदेशः

अथ मुद्राकथन-प्रकरणम्

मुद्राएँ

महामुद्रा नभोमुद्रा उड्डीयानं **जलन्धरम्।**
मूलबन्धो महाबन्धो **महावेधश्च खेचरी।।1।।**
विपरीतकरी योनिर्वज्रोली शक्तिचालिनी।
ताडागी माण्डवीमुद्रा **शाम्भवी पञ्च धारणाः।।2।।**
अश्विनी पाशिनी काकी मातङ्गी च भुजङ्गिनी
पञ्चविंशतिमुद्राणि सिद्धिदानीह योगिनाम्।।3।।

अन्वय-पदार्थः- महामुद्रा, नभोमुद्रा उड्डीयानम् जलन्धरम् मूलबन्धः महाबन्धः महावेधः खेचरी विपरीतकरी योनिः वज्रोली शक्तिचालिनी ताडागी माण्डवीमुद्रा शाम्भवी पञ्चधारणा (पाँच धारणाएँ) अश्विनी पाशिनी काकी मातङ्गी भुजङ्गिनी पञ्चविंशतिमुद्राणि (ये पचीस मुद्राएँ) इह (यहाँ) योगिनाम् सिद्धिदाः (योगियों को सिद्धियाँ देने वाली हैं)।

भावार्थः- मुद्रायें ये पचीस हैं—महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डीयान, जलन्धर, मूलबन्ध, महाबन्ध, महावेध खेचरीमुद्रा, विपरीतकरणी मुद्रा, योनिमुद्रा, वज्रोली मुद्रा, पांच धारणाएँ अर्थात् पृथिवी धारणा, जल धारणा, अग्नि धारणा, वायु धारणा, नभो धारणा, अश्विनीमुद्रा, पाशिनी मुद्रा, काली मुद्रा, मातङ्गी मुद्रा और भुजङ्गिनी मुद्रा, ये मुद्रायें योगियों को सिद्धि प्रदान करती हैं।

मुद्राणां पटलं देवि! कथितं तव सन्निधौ।
येन विज्ञातमात्रेण **सर्वसिद्धिः प्रजायते।।4।।**
गोपनीयं प्रयत्नेन न देयं यस्य कस्यचित्।
प्रीतिदं योगिनां चैव दुर्लभं मरुतामपि।।5।।

अन्वयः- हे देवि! तव सन्निधौ मुद्राणाम् पटलम् कथितम्, येन विज्ञातमात्रेण सर्वसिद्धिः प्रजायते। (इदम्) प्रयत्नेन गोपनीयम् यस्य कस्य- चित् न देयम्। (इदम्) योगिनाम् प्रीतिदम् मरुताम् अपि दुलर्भम्।

पदार्थाः- (देवि) हे देवि! (तव सन्निधौ) तुम्हारे सामने मैंने (मुद्राणां पटलम्) मुद्राओं के समूह का (कथितम्) कथन किया है, (येन विज्ञातमात्रेण) जिनके जानने मात्र से (सर्वसिद्धिः प्रजायते) सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। (प्रयत्नेन गोपनीयम्) इन्हें प्रयत्न पूर्वक गुप्त रखना चाहिए, (योगिनाम् प्रीतिदम्) यह मुद्राओं का समूह योगियों को आनन्द देता है, (मरुताम् अपि दुर्लभम्) यह मरुत्गणों के लिए भी दुर्लभ है।

भावार्थः- हे देवि! अभी मैंने मुद्राओं के समूह का परिगणन किया है, जिनको जाननेमात्र से सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, प्रयत्नपूर्वक इन्हें गुप्त रखना चाहिए। चाहे जिनको इनका उपदेश नहीं करना चाहिए। मरुत्गण भी इन्हें नहीं जानते। इनके अभ्यास से योगियों को आनन्द प्राप्त होता है।

महामुद्राः-

पायुमूलं वामगुल्फे सम्पीड्य **दृढयत्नतः।**
याम्यं पादं प्रसार्याथ करे धृतपदाङ्गुलः।।6।।
कण्ठसंकोचनं **कृत्वा भ्रुवोर्मध्यं** निरीक्षयेत्।
महामुद्राभिधा **मुद्रा कथ्यते सैव सूरिभिः।।7।।**

अन्वयः- दृढयत्नतः वामगुल्फे पायुमूलम् सम्पीड्य अथ याम्यम् पादम् प्रसार्य करे धृतपदाङ्गुलः कण्ठसंकोचनम् कृत्वा भ्रुवोः मध्यम् निरीक्षयेत्। सूरिभिः सा (इयम्) मुद्रा एव महामुद्रा-अभिधा कथ्यते।

पदार्थः- (दृढयत्नतः) पूर्ण प्रयत्नपूर्वक (वामगुल्फे) बायीं एड़ी पर (पायुमूलम्) गुदामार्ग को (सम्पीड्य) दबाकर (अथ याम्यं पादम् प्रसार्य) उसके बाद दाहिने पैर को फैलाकर (करे धृतपदाङ्गुलः) हाथ से पैर के अंगूठे को पकड़े हुए (कण्ठसंकोचनम् कृत्वा) कण्ठ को

सिकोड़ करके (भ्रुवोः मध्यम्) दोनों भौंहां की मध्य को (निरीक्षयेत्) देखें, (सूरिभिः) विद्वानों ने (मुद्रा) इस मुद्रा को (महामुद्राभिधा) महामुद्रानाम से (कथ्यते) कहा है।

भावार्थः- गुदा द्वार से बायें पैर की एड़ी को पूर्ण प्रयत्न से दबाकर और उसके बाद दाहिने पैर को फैलाकर पैर के अंगूठे से पकड़े तथा कण्ठ को संकुचित करके अर्थात् जालन्धरबन्ध लगाकर भौहों के बीच में देखे। इस मुद्रा को महामुद्रा कहा जाता है।

क्षयं कासं उदावर्तं प्लीहां जीर्णज्वरन्त**था।**
नाशयेत् सर्वरोगांश्च महामुद्राति **सेवनात्।।8।।**

अन्वयः- महामुद्रा क्षयम् कासम् उदावर्त्तम् प्लीहाम् जीर्णज्वरम् तथा अतिसेवनात् सर्वरोगांश्च नाशयेत्।

पदार्थः- (महामुद्रा) महामुद्रा नामक यह मुद्रा (क्षयम्) क्षयरोग को (कासम्) खांसी को (उदावर्त्तम्) उदावर्तरोग को (प्लीहाम्) पेट के तिल्ली सम्बन्धी रोगों को (जीर्णज्वरम्) पुराने बुखार को तथा (सर्वरोगान्) सभी रोगों को (अति सेवनात्) अधिक देर तक अभ्यास करने पर (नाशयेत्) दूर करती है।

भावार्थः- महामुद्रा का अभ्यास करने से क्षयरोग अर्थात् राजयक्ष्मा खांसी उदावर्त्त (अफारा) तिल्ली के रोग पुराना ज्वर तथा थोड़ा अधिक अभ्यास करने पर सभी रोग दूर होते हैं।

नभोमुद्राः-

यत्र तत्र स्थितो योगी सर्वकार्येषु **सर्वदा।**
ऊर्ध्वजिह्वः स्थिरो भूत्वा धारयेत् पवनं सदा।।9।।
नभो मुद्रा भवेदेषा योगिनां रोगनाशिनी**।।**

अन्वयः- योगी सर्वदा सर्वकार्येषु **यत्र तत्र स्थितः स्थिरः** सदा ऊर्ध्वजिह्वः भूत्वा पवनम् धारयेत्, एषा रोगनाशिनी **योगिनाम् नभोमुद्रा भवेत्।**

पदार्थः- (योगी) योग की साधना करने वाला (सर्वदा सर्वकार्येषु) सभी समयों में सभी अर्थात् किसी भी कार्यों में लगे रहने पर भी (यत्र तत्र स्थितः) जहाँ कहीं भी विद्यमान हो (स्थिरो भूत्वा) स्थिर या एकाग्र होकर (सदा) सभी काल में (ऊर्ध्वजिह्वः भूत्वा) जीभ को ऊपर करके (पवनं धारयेत्) प्राणवायु को रोके (एषा रोगनाशिनी) रोगों को नष्ट करने वाली यह (योगिनाम् नभोमुद्रा भवेत्) योगियों की नभोमुद्रा कही जाती है।

भावार्थः- नभोमुद्रा करने के लिए योगी किसी भी समय कहीं भी विद्यमान हो, कुछ भी कर रहा हो, सभी समय वह जीभ को ऊपर करके प्राणवायु को रोके। इसके अभ्यास से सभी रोग दूर होते हैं।

उड्डीयानबन्धः-

उदरे पश्चिमं तानं नाभेरूर्ध्वन्तु कारयेत्।।10।।
उड्डीयानं कुरुते यत् तदविश्रान्तं महाखगम्।
उड्डीयनस्त्वसौबन्धो मृत्युमातङ्गकेसरी।।11।।

अन्वयः- उदरे नाभेः ऊर्ध्वम् पश्चिमम् तानम् कारयेत्, यत् उड्डीयानम् तत् महाखगम् अविश्रान्तम् उड्डीयानम् कुरुते, असौ उड्डीयानोबन्धः मृत्युमातङ्गकेसरी (अस्ति)।

पदार्थः- (उदरे नाभेः ऊर्ध्वम्) पेट में नाभि के ऊपर (पश्चिमम् तानम् कारयेत्) पीछे की ओर ताने, (यत् उड्डीयानम्) यह जो उड्डीयान बन्ध है, (तत्) वह (महाखगम्) प्राणों को (अविश्रान्तम्) निरन्तर (उड्डीयानम् कुरुते) ऊर्ध्वगामी करता है। (असौ उड्डीयानः बन्धः) यह उड्डीयान बन्ध (मृत्युमातङ्गकेसरी) मृत्युरूपी हाथी को मारने वाला सिंह है।

भावार्थः- उड्डीयानबन्ध करने के लिए पेट के नाभि से ऊपरी भाग को पीछे की ओर तानते हैं, इससे प्राण ऊर्ध्वगामी होते हैं, यह उड्डीयान बन्ध मृत्यु को उसी प्रकार जीत लेता है, जैसे सिंह हाथी को।

समग्राद् बन्धनादेतद् उड्डीयानं विशिष्यते।
उड्डीयाने **समभ्यस्ते मुक्तिः स्वाभाविकी भवेत्।।12।।**

अन्वयः- एतत् उड्डीयानम् समग्रात् बन्धनात् विशिष्यते, उड्डीयाने समभ्यस्ते मुक्तिः स्वाभाविकी भवेत्।

पदार्थः- (एतत् उड्डीयानम्) यह उड्डीयान बन्ध (समग्रात् बन्धनात्) सभी बन्धों से (विशिष्यते) विशेष है, (उड्डीयाने समभ्यस्ते) इस उड्डीयान बन्ध का अभ्यास करने से (मुक्तिः) मोक्ष (स्वाभिविकी भवेत्) स्वाभाविक रूप से हो जाता है।

भावार्थः- उड्डीयानबन्ध सभी बन्धों में विशेष है, जो उड्डीयानबन्ध का अभ्यास करता है, उसकी मुक्ति स्वाभाविक रूप से ही हो जाती है।

जालन्धर बन्धः-

कण्ठसंकोचनं कृत्वा चिबुकं हृदये न्यसेत्।
जालन्धरकृते बन्धे षोडशाधारबन्धनम्।।13।।
जालन्धर-महामुद्रा मृत्योश्च क्षयकारिणी।
सिद्धं जालन्धरं बन्धं योगिनां सिद्धिदायकम्।।14।।
षण्मासमभ्यसेद् यो हि सः सिद्धो नात्र संशयः।

अन्वयः- कण्ठसंकोचनम् कृत्वा चिबुकम् हृदये न्यसेत्, जालन्धरबन्धे कृते षोडशाधारबन्धनम् (भवति) जालन्धरमहामुद्रा मृत्योः क्षयकारिणी, जालन्धरम् बन्धम् सिद्धम् योगिनाम् सिद्धिदायकम्। यः हि षट्मासम् अभ्यसेत् सः सिद्धः अत्र संशयः न।

पदार्थः- (कण्ठसंकोचनम् कृत्वा) कण्ठ का संकोचन करके (चिबुकम्) ठुड्ढी को (हृदये न्यसेत्) हृदय पर रखे। (जालन्धरबन्धे कृते) जालन्धरबन्ध करने पर (षोडश-आधारबन्धनम्) सोलह आधारों का भी बन्धन हो जाता है। (जालन्धरमहामुद्रा) जालन्धर नामक श्रेष्ठ मुद्रा (मृत्योः क्षयकारिणी) मृत्यु के भय को दूर करती है (जालन्धरम् बन्धम् सिद्धम्) जालन्धर बन्ध सिद्ध होकर (योगिनाम् सिद्धिदायकम्)

योगियों को सिद्धियाँ प्रदान करता है, (यः हि षट्मासम् अभ्यसेत्) जो छः महीने इसका अभ्यास करता है (सः सिद्धः) वह सिद्ध है (अत्र संशयः न) इसमें कोई सन्देह नहीं है।

भावार्थः- कण्ठ को सिकोड़कर ठुड्ढी को हृदय पर रखे, जालन्धरबन्ध करने पर सोलह प्रकार के आधारों में बन्ध लग जाता है, यह श्रेष्ठ जालन्धर बन्ध मृत्यु का नाश करता है, इसके सिद्ध होने पर योगियों को अनेक सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है। जो छः मास इसका अभ्यास करता है वह निःसन्देह सिद्ध है।

मूलबन्धः-

पार्ष्णिना **वामपादस्य** योनिमाकुञ्चयेत्ततः।।15।।
नाभिग्रन्थिं **मेरुदण्डं** सम्पीड्य **यत्नतः सुधीः।**
मेढ्रं दक्षिणगुल्फेन **दृढबन्धं** समाचरेत्।।16।।
जराविनाशिनी **मुद्रा** मूलबन्धो **निगद्यते।**
संसारसागरन्तर्तुमभिलषति **यः पुमान्।।17।।**
सुगुप्तो विजने भूत्वा मुद्रामेनां समभ्यसेत्।
अभ्यासाद् **बन्धनक्षयः** मरुत्सिद्धिर्भवेद् **ध्रुवम्।।18।।**
साधयेद् यत्नतस्तर्हि **मौनी तु** विजितालसः।

अन्वयः- वामपादस्य पार्ष्णिना योनिम् आकुञ्चयेत् ततः सुधी यत्नतः नाभिग्रन्थिं मेरुदण्डम् **सम्पीड्य** दक्षिणगुल्फेन **मेढ्रम् दृढबन्धं समाचरेत्** जराविनाशिनी (इयम्) मुद्रा **मूलबन्धः निगद्यते, यः पुमान् संसारसागरम्** तर्तुम् अभिलषति (सः) विजने **सुगुप्तो भूत्वा एनाम्** मुद्राम् समभ्यसेत् **अस्य बन्धस्य अभ्यासात् बन्धनक्षयः** मरुत्सिद्धिः **ध्रुवम् भवेत्, तर्हि मौनी विजितालसः** यत्नतः साधयेत्।

पदार्थः- (**वामपादस्य पार्ष्णिना**) बायें पैर की एड़ी से (योनिम् आकुञ्चयेत्) **योनि को दबाये** (ततः) उसके बाद (सुधी यत्नतः) बुद्धिमान् **साधक** प्रयत्नपूर्वक (नाभिग्रन्थिम् मेरुदण्डम्) **नाभि और मेरुदण्ड को** (**सम्पीड्य**) **तानकर** (दक्षिणगुल्फेन) **दाहिने पैर की एड़ी से** (मेढ्रम्) **लिङ्ग को** (**दृढबन्धम्** समाचरेत्) **भली प्रकार दबाये,**

(जरविनाशिनी इयम् मुद्रा) वृद्धावस्था को दूर करने वाली इस मुद्रा को (मूलबन्धः निगद्यते) मूलबन्ध कहते है (यः पुमान्) जो पुरुष (संसारसागरम्) भवसागर को (तर्त्तुम् अभिलषति) पार करना चाहता है वह (विजने) एकान्त में (सुगुप्तो भूत्वा) गुप्तरूप से रहकर (एनाम् मुद्राम्) इस मुद्रा का (समभ्यसेत्) भलीप्रकार अभ्यास करे (अस्य बन्धस्य अभ्यासात्) इस बन्ध के अभ्यास से (बन्धनक्षयः) बन्धनों का नाश और (मरुत्सिद्धिः ध्रुवम् भवेत्) प्राणायाम में सिद्धि निश्चय ही मिलती है। (तर्हि) इसलिए (मौनी) मौनसाधक (विजितालसः) आलस्यरहित होकर (यत्नतः साधयेत्) इस बन्ध की साधना करे।

भावार्थः- मूलबन्ध की साधना के लिए बायें पैर की एड़ी से योनि को दबाकर उसका संकोचन करे तथा दाहिने पैर की एड़ी से लिङ्ग को दबाये तथा नाभि और मेरुदण्ड को भी ताने। इस मूलबन्ध के अभ्यास से वृद्धावस्था दूर होती है, प्राणायाम में सिद्धि अवश्य मिलती है। जो साधक भवसागर को पार करना चाहता है, उसे चाहिए कि वह एकान्त में गुप्तरूप से इसका अभ्यास करे, इसके लिए आलस्यरहित होकर नित्य साधना करे।

महाबन्धः-

वामपादस्य गुल्फेन पायुमूलं निरोधयेत्।।19।।
दक्षपादस्य गुल्फेन सम्पीड्य **यत्नः सुधीः।**
शनैःशनैश्चालयेत् **पार्ष्णिं** योनिमाकुञ्चयेच्छनैः।।20।।
जालन्धरे धारयेत्प्राणम्महाबन्धो **निगद्यते।**
महाबन्धः परो बन्धो जरामरणनाशनः।।21।।
प्रसादादस्य बन्धस्य साधयेत्सर्ववाञ्छितम्।

अन्वयः- वामपादस्य गुल्फेन पायुमूलम् निरोधयेत्, दक्षपादस्य गुल्फेन **योनिम्** सम्पीड्य शनैःशनैः पार्ष्णिम् चालयेत् योनिम् शनैः आकुञ्चयेत् जालन्धरे **प्राणम् धारयेत्।** (अयम्) महाबन्धः निगद्यते,

महाबन्धः जरामरणनाशनः परो बन्धः, सुधीः अस्य बन्धस्य प्रसादात् सर्ववाञ्छितम् साधयेत्।

पदार्थः- (वामपादस्य गुल्फेन) बायें पैर की एड़ी से (पायुमूलम्) गुदामार्ग को (निरोधयेत्) बन्द करे (दक्षपादस्य गुल्फेन) दाहिने पैर की एड़ी से (योनिम् यत्नतः सम्पीड्य) प्रयत्नपूर्वक योनि को दबाकर (शनैःशनैः) धीरे धीरे (पाष्णिम् चालयेत्) एड़ी को गतिशील करे अर्थात् बार बार योनि को दबाने का प्रयत्न करे (योनिम् शनैः आकुञ्चयेत्) योनि को धीरे धीरे सिकोड़े तथा (जालन्धरे प्राणम् धारयेत्) जालन्धरबन्ध की स्थिति में कुम्भक करे (महाबन्धः निगद्यते) इसे महाबनध कहते हैं (महाबन्धः) यह महाबबन्ध (जरामरणनाशनः) बुढ़ापा और मृत्यु को दूर करता है। (सुधीः) बुद्धिमान् साधक (अस्य बन्धस्य प्रसादात्) इस बन्ध के प्रभाव से (सर्ववाञ्छितम् साधयेत्) सभी कामनाओं को पूर्ण करे।

भावार्थः- महाबन्ध करने के लिए बायें पैर की एड़ी से गुदामार्ग को और दाहिने पैर की एड़ी से योनि को प्रयत्नपूर्वक निरन्तर दबाएँ और योनि और गुदा को निरन्तर सिकोड़े तथा जालन्धरबन्ध करके कुम्भक करे। यह महाबन्ध वृद्धावस्था और मृत्यु को दूर करता है, अतः साधक को चाहिए इस बन्ध के प्रभाव से सभी कामनाओं को पूर्ण करे।

महाबेधः-

रूपयौवनलावण्यं **नारीणां पुरुषं विना।।22।।**
मूलबन्धमहाबन्धौ **महाबेधं विना तथा।**
महाबन्धं समासाद्य उड्डीनकुम्भकं **चरेत्।।23।।**
महावेधः समाख्यातो **योगिनां** सिद्धिदायकः।
महाबन्धमूलबन्धौ **महावे**धसमन्वितौ।।24।।
प्रत्यहं कुरुते यस्तु स योगी योगवित्तमः।
न मृत्युतो भयं तस्य न जरा तस्य विद्यते।।25।।
गोपनीयः प्रयत्नेन वेधोऽयं योगिपुङ्गवैः।

अन्वयः- (यथा) पुरुषम् विना नारीण ाम् रूपयौवनलावण्यम् (निरर्थकम्) तथा महावेधम् विना मूलबन्धमहाबन्धौ (निरर्थकौ) महाबन्धम् समासाद्य उड्डीनकुम्भकम् चरेत्, (एषः) योगिनाम् सिद्धिदायकः महावेधः समाख्यातः। यः योगी प्रत्यहम् महावेधसमन्वितौ महाबन्ध-मूलबन्धौ कुरुते सः योगवित्तमः तस्य न जरा न मृत्युतः भयम् विद्यते। योगिपुङ्गवैः अयम् वेधः प्रयत्नेन गोपनीयः।

पदार्थः- जिस प्रकार (पुरुषम् विना) पुरुष के विना (नारीणाम्) स्त्रियों का रूप-यौवन और सौन्दर्य निरर्थक है (तथा) उसी प्रकार (महावेधम् विना) महावेध के विना (मूलबन्धमहाबन्धौ) मूलबन्ध और महाबन्ध निरर्थक हैं (महाबन्धम् समासाद्य) महाबन्ध में स्थित होकर (उड्डीनकुम्भकम्) उड्डीयानबन्ध के साथ कुम्भक (चरेत्) करे यह (योगिनाम् सिद्धिदायकः) योगियों को सिद्धि देने वाला (महावेधः समाख्यातः) महावेध कहलाता है। (यः योगी) जो योगसाधक (प्रत्यहम्) प्रतिदिन (महावेधसमन्वितौ) महावेध के साथ (महाबन्ध-मूलबन्धौ कुरुते) महाबन्ध और मूलबन्ध करता है (सः) वह (योगवित्तमः) योग को जानने वालों में श्रेष्ठ है। (तस्य) उसे (न जरा) वृद्धावस्था नहीं होती है, (न मृत्युतः भयम् विद्यते) और न मृत्यु से भय होता है, (योगिपुङ्गवैः) श्रेष्ठ योगी (अयम् वेधः) इस वेध को (गोपनीयः) गुप्त रखें।

भावार्थः- जिस प्रकार पुरुष के विना स्त्रियों का रूपयौवन और सौन्दर्य निरर्थक है, उसी प्रकार महावेध के विना मूलबन्ध और महाबन्ध निरर्थक हैं। साधक को चाहिए कि वह महाबन्ध की स्थिति में आकर उड्डीयानबन्ध लगाते हुए कुम्भक करे, इस स्थित को योगियों को सिद्धि देने वाला महावेध कहा जाता है। जो योगी प्रतिदिन महावेध के साथ महाबन्ध और मूलवन्ध करता है, वह श्रेष्ठयोगी है। उसे न वृद्धावस्था सताती है, न मृत्यु का भय होता है। श्रेष्ठ योगियों को चाहिए कि वे इस महावेध को गुप्त रखें।

खेचरीमुद्राः-

जिह्वाधो नाडीं संच्छिन्नां **रसनां** चालयेत्सदा।।26।।
दोहयेन्नवनीतेन लोहयन्त्रेण **कर्षयेत्।**
एवं नित्यं समभ्यासाल्लम्बिका **दीर्घतां व्रजेत्।।27।।**
यावद् गच्छेद् भ्रुवोर्मध्ये तथा गच्छति खेचरी।
रसनां तालुमध्ये **तु शनैःशनैः** प्रवेशयेत्।।28।।
कपालकुहरे **जिह्वा प्रविष्टा** विपरीतगा।
भ्रुवोर्मध्ये गता दृष्टिर्मुद्रा **भवति खेचरी।।29।।**

अन्वयः- जिह्वा-अधः नाडीम् संछिन्नाम् (कृत्वा) सदा रसनाम् चालयेत्, नवनीतेन दोहयेत्, लोहयन्त्रेण कर्षयेत् एवं नित्यं समभ्यासात् लम्बिका दीर्घताम् व्रजेत्, यावद् भ्रुवोः मध्ये गच्छेत् तथा खेचरी गच्छति (तदा) रसनाम् शनैःशनैः तालुमध्ये प्रवेशयेत्। विपरीतगा जिह्वा कपालकुहरे, प्रविष्टा दृष्टिः भ्रुवोः मध्ये गता, खेचरी मुद्रा भवति।

पदार्थः- (जिह्वा-अधः नाडीम्) जिह्वा के नीचे की नाड़ी को (संछिन्नाम्) काटकर (रसनाम् सदा चालयेत्) जिह्वा को सदा चलाये (नवनीतेन) मक्खन की सहायता से (दोहयेत्) दुहे अर्थात् दुहने के समय जैसे गो के स्तनों को अंगुलियों से हलका दबाकर खींचते हैं वैसा करे, (लोहयन्त्रेण) लोहे के चमटे से (कर्षयेत्) खींचे। (एवं नित्यम् समभ्यासात्) नित्य इस प्रकार अभ्यास करने से (लम्बिका) जीभ (दीर्घताम् व्रजेत्) लम्बी हो जायेगी। (यावद् भ्रुवोः मध्ये गच्छेत्) इतनी कि भ्रूमध्य तक पहुँच जाए, (तथा खेचरी गच्छति) उस स्थिति में वह ऊपर आकाश तक जा सकेगी। तदनन्तर (रसनाम्) जिह्वा को (शनैः शनैः) धीरे धीरे (तालुमध्ये प्रवेशयेत्) तालु के मध्य में प्रविष्ट कराये (विपरीतगा जिह्वा) उलटी गयी जीभ (कपालकुहरे प्रविष्टा) जब तालु की पीछे के छिद्र में प्रविष्ट होती है और (दृष्टिः भ्रुवोः मध्ये गता) दृष्टिः भ्रूमध्य में स्थिर हो (खेचरीमुद्रा भवति) तब खेचरी मुद्रा होती है।

भावार्थः- खेचरीमुद्रा के लिए सर्वप्रथम जीभ के नीचे की नाड़ी को काटते हैं और निरन्तर उसको चलाते हैं उसके बाद मक्खन की

सहायता से उसी प्रकार बाहर की ओर खींचते हैं जैसे गौ को दुहने के लिए उसके स्तन को खींचते है। उसके बाद लोहे के चिमटे से तब तक खींचते है, जब तक वह बाहर से भ्रूमध्य तक पहँचने के योग्य न हो जाये। इसके बाद तालु के पीछे छिद्र में उलटकर जीभ को प्रविष्ट कराते हैं और दृष्टि को भ्रूमध्य में स्थिर करते हैं। यह खेचरीमुद्रा कहलाती है।

न च मूर्च्छा क्षुधा तृष्णा नैवालस्यं प्रजायते।
न च रोगो जरामृत्युः देवदेहः स जायते।।30।।
नाग्निना दह्यते गात्रं न शोषयति मारुतः।
न देहं क्लेदयन्त्यापो दंशयेन्न भुजङ्गमः।।31।।
लावण्यञ्च भवेद् गात्रे समाधिर्जायते ध्रुवम्।
कपालवक्त्रसंयोगे रसना रसमाप्नुयात्।।32।।
नानारससमुद्भूतमानन्दं च दिने दिने।
आदौ लवणक्षारञ्च ततस्तिक्तं कषायकम्।।33।।
नवनीतं धृतं क्षीरं दधि तक्रमधूनि च।
द्राक्षारसं च पीयूषं जायते रसनोदकम्।।34।।

अन्वयः- (यः एनाम् अभ्यसेत् तस्य) न मूर्च्छा क्षुधा तृष्णा, न एव आलस्यम् प्रजायते, न च रोगः जरामृत्युः प्रजायेत, सः देवदेहो जायते (तस्य) गात्रम् न अग्निना दह्यते, न मारुतः शोषयति, न आपः देहम् क्लेदयति, न भुजङ्गमः दंशयेत्, देहे लावण्यम् भवेत्, समाधिः ध्रुवम् जायते। कपालवक्त्रसंयोगे रसना रसम् आप्नुयात्, दिने दिने नाना रससमुद्भूतम् आनन्दम् (भवेत्)। आदौ रसनोदकम् सलवण-क्षारम्, ततः तिक्तम् कषायकम् नवनीतम् घृतम् क्षीरम् दधि-तक्र-मधूनि च दाक्षारसम् पीयूषम् जायते।।

पदार्थः- जो इसका नित्य निरन्तर अभ्यास करता है उसे (न मूर्च्छा क्षुधा, तृष्णा) न तो चेतना हानि होती है, न भूख-प्यास लगती है, (न एव आलस्यं प्रजायते) नहीं आलस्य होता है, (न रोगः जरामृत्युः प्रजायते) न रोग होता है, न बुढ़ापा और न मृत्यु। (देवदेहः

जायते) उसका शरीर दिव्य हो जाता है, (गात्रम् अग्निना न दह्यते) शरीर अग्नि से नहीं जलता, (न मारुतः शोषयति) न वायु सुखाता है, (न आपः देहम् क्लेदयति) न पानी शरीर को भिगोता है, (न भुजङ्गमः दंशयेत्) न सर्प काटता है। (देहे लावण्यम् भवेत्) शरीर में सुन्दरता हो जाती है, उसे (समाधिःध्रुवम् जायते) समाधि स्थिर हो जाती है। (कपालवक्त्ररसना- संयोगे) कपाल का मुख और जिह्वा का संयोग होने पर (रसना) जिह्वा (रसम् आप्नुयात्) जिह्वा को रस मिलता है, (दिने दिने) क्रमशः दिनों में (नानारससमुद्भुतम् आनन्दम्) अनेक रसों के अनुभव का आनन्द होता है। (आदौ लवणक्षारम्) प्रारम्भ में लवण और क्षार का अनुभव होता है, (ततः तिक्तम् कषायकम्) फिर तीते और कषैले रस का, उसके बाद क्रमशः (नवनीतम् घृतम् क्षीरम्) मक्खन घृत और दूध का, (दधि तक्र मधूनि च) दही मट्ठा और मधु का (द्राक्षारसं च पीयूषम् रसनोदकम् जायते) अंगूर का रस और अमृत के रस के समान (रसनोदकं जायते) जिह्वा का रस होता है।

भावार्थः- जो इस खेचरीमुद्रा का नित्य निरन्तर अभ्यास करता है वह न कभी अचेतन होता है, न उसे भूख-प्यास लगती है, न उसे आलस्य आता है, उसे न रोग होते हैं, न बुढ़ापा न मृत्यु, उसका शरीर दिव्य हो जाता है, उसका शरीर न अग्नि से जलता है, न पानी से भीगता है, न वायु उसे सुखा सकती है, न सर्प काटता है, शरीर सुन्दर हो जाता है और उसे स्थिर समाधि हो जाती है। जिह्वा जब कपाल के मुख का स्पर्श करती है तो उसे विविध रसों की प्राप्ति के आनन्द का अनुभव भिन्न भिन्न दिनों में होता है, पहले लवण और क्षार रस का फिर तीते और कषैले का, फिर मक्खन, घृत, दूध, दही, तक्र (मट्ठा), मधु, अंगूर के रस और अमृतरस जिह्वा से उत्पन्न होता है।

विपरीतकरणी मुद्राः-

नाभिमूले वसेत् सूर्यस्तालुमूले च चन्द्रमा।
अमृतं ग्रसते सूर्यस्ततो मृत्युवशो नरः।।35।।

ऊर्ध्वे च गमयेत्सूर्यं चन्द्रञ्च अध आनयेत्।
विपरीतकरीमुद्रा सर्वतन्त्रेषु गोपिता।।36।।
भूमौ शिरश्च संस्थाप्य करयुग्मे समाहितः।
ऊर्ध्वपादः स्थिरो भवेत् विपरीतकरी मता।।37।।

अन्वयः- सूर्यः नाभिमूले वसेत्, चन्द्रमा च तालुमूले, ततः सूर्यः अमृतम् ग्रसते, ततः नरः मृत्युवशः। ऊर्ध्वे च सूर्यम् गमयेत्, चन्द्रम् च अधः आनयेत्, (इयम्) सर्वतन्त्रेषु गोपिता विपरीतकरीमुद्रा। समाहितः करयुग्मे भूमौ शिरः संस्थाप्य ऊर्ध्वपादः स्थिरो भवेत्, (इयं) विपरीतकरीमता।

पदार्थः- (सूर्यः नाभिमूले वसेत्) सूर्य का निवास नाभिमूल है (चन्द्रमा च तालुमूले) और चन्द्र का तालु के मूल में आवास है (सूर्यः अमृतम् ग्रसते) सूर्य चनद्रमा से निकलने वाले अमृत की ग्रस लेता है (ततः) इसी कारण (नरः मृत्युवशः) मनुष्य मृत्यु के वश में है। (ऊर्ध्वे) ऊपर (सूर्यं गमयेत्) सूर्य को ले जाए (चन्द्रं च) और चन्द्रमा को (अधः आनयेत्) नीचे लाये, यह (सर्वतन्त्रेषु गोपिता) सभी शास्त्रों में गुप्त रखी गयी (विपरीतकरी मुद्रा) विपरीतकरी मुद्रा है। इसके लिए (समाहितः) एकाग्र होकर (करयुग्मे भूमौ) दोनों हथेलियों के मध्य में भूमि पर (शिरःसंस्थाप्य) शिर रखकर (ऊर्ध्वपादः) पैर ऊपर करके (स्थिरो भवेत्) स्थिर होवे, यह (विपरीतकरी मता) विपरीकरी मुद्रा मानी जाती है।

भावार्थः- सूर्य का स्थान नाभि के मूल में और चन्द्रमा का स्थान तालु के मूल में है, इसलिए चन्द्रमा से झरनेवाले अमृत को सूर्य ग्रस लेता है और इसी कारण मनुष्य मृत्यु के वश में है। सभी तन्त्रों (योगग्रन्थों) गुप्त रखी गयी इस मुद्रा को करने के लिए सूर्य को ऊपर ले जाए और चन्द्रमा को नीचे लाये। इसके लिए दोनों हथेलियों के मध्य में भूमि पर शिर को रखे और एकाग्रचित्त होकर पैरों को ऊपर करके स्थिर होवे इसे विपरीतकरी या विपरीतकरणी मुद्रा कहते हैं। परम्परा में इसे शीर्षासन भी कहा जाता है।

मुद्रेयं साधयेन्नित्यं जरां मुत्युं च नाशयेत्।
सः सिद्धः सर्वलोकेषु प्रलयेऽपि न सीदति।।38।।

अन्वयः- यः (योगी) इयम् मुद्रां इमां मुद्रां नित्यं साधयेत्, जराम् मृत्युं च नाशयेत्, सः सर्वलोकेषु सिद्धः प्रलये अपि न सीदति।

पदार्थः- जो योगी (इयं मुद्रा/ इमां मुद्राम्) इस मुद्रा को (नित्यम् साधयेत्) प्रतिदिन सिद्ध कर लेता है (सः सर्वलोकेषु सिद्धः) वह सब संसार में सिद्ध पुरुष है (जराम् मृत्युं च) बुढ़ापा और मृत्यु को (नाशयेत्) नष्ट कर देता है (प्रलये अपि) प्रलय के समय भी (न सीदति) वह दुःखी नहीं होता है।

भावार्थः- जो योगी इस मुद्रा का नित्य अभ्यास करता है वह बुढ़ापा और मृत्यु को जीत लेता है और प्रलयकाल में भी दुःखी नहीं होता है।

योनिमुद्राः-

सिद्धासनं **समासाद्य कर्ण चक्षुः नसो मुखम्।**
अंगुष्ठतर्जनीमध्यानामादिभिश्च **साधयेत्।।39।।**
काकीभिः प्राणमाकृष्य **अपाने योजयेत् ततः।**
षट् चक्राणि क्रमाद् ध्यात्वा हुं हंस मनुना सुधीः।।40।।
चैतन्यमानययेद् **देवीं निद्रितां तां भुजङ्गिनीम्।**
जीवेन सहितां शक्तिं समुत्थाप्य कराम्बुजे।।41।।
शक्तिमयः **स्वयं भूत्वा परं शिवेन संगमम्।**
नानासुखं विहारञ्च चिन्तयेत्परमं **सुखम्।।42।।**
शिवशक्तिसमायोगादेकान्तं **भुवि भावयेत्।**
आनन्दं च स्वयं भूत्वा अहम्ब्रह्मेति **भावयेत्।।43।।**
योनिमुद्रा **परं गोप्या** देवानामपि **दुर्लभा**
सकृत्तु लाभसंसिद्धिः समाधिस्थः **स एव हि।।44।।**

अन्वयः- सिद्धासनम् **समासाद्य** अंगुष्ठ-तर्जनी-मध्या-अनामा आदिभिः कर्णम् **चक्षुःनसोमुखम् साधयेत्,** काकीभिः प्राणम् आकृष्य अपाने योजयेत्, ततः हुं हंसमनुना षट् चक्राणि क्रमात् ध्यात्वा सुधीः

(साधकः) निद्रिताम् ताम् भुजङ्गिनीं देवीम् चैतन्यम् आनयेत्, जीवेन सहितां शक्तिम् समुत्थाप्य कराम्बुजे (कुर्यात्) स्वयम् शक्तिमयः भूत्वा शिवेन परम् संगमम् नानासुखम् विहारम् परमम् सुखम् च चिन्तयेत्, शिवशक्तिसमायोगात् भुवि एकान्तम् आनन्दम् भावयेत्, स्वयम् च (ब्रह्ममयः) भूत्वा 'अहम्ब्रह्म' इति भावयेत्। देवानाम् अपि दुर्लभा योनिमुद्रा परं गोप्या, सकृत् तु लाभसंसिद्धिः सः हि समाधिस्थः एव।

पदार्थः- (सिद्धासनम् समासाद्य) सिद्धासन लगाकर (अंगुष्ठ-तर्जनी-मध्या-अनामा आदिभिः) अंगूठा प्रथम अंगुली मध्या अनामिका आदि अंगुलियों से (कर्णचक्षुः नसोः मुखम्) कान, नेत्र, नासिका और मुख को (साधयेत्) सिद्ध करे अर्थात् उनकी क्रियाओं को स्थिर करे (काकीभिः प्राणम् आकृष्य) काकी प्राणायाम की विधि से प्राणवायु को अन्दर लेकर (सुधीः) बुद्धिमान् साधक (हुं हंसमनुना) 'हुं हंसः' के मन्त्र के साथ (षट् चक्राणि क्रमात् ध्यात्वा) क्रमशः मूलाधार स्वाधिष्ठान मणिपूर अनाहत विशुद्ध और आज्ञा इन छः चक्रों पर ध्यान करके (निद्रिताम् ताम् भुजङ्गिनीम्) सोयी हुई उस कुण्डलिनी को (चैतन्यम् आनयेत्) जागृत करे, (जीवेन सहिताम् शक्तिम्) जीवसहित उस शक्ति को क्रमशः (समुत्थाप्य) ऊपर उठाकर (कराम्बुजे) अपने आधीन करे (स्वयम् शक्तिमयः भूत्वा) स्वयं शक्तिमय होकर (शिवेन परम् संगमम्) शिव के साथ पूर्ण मिलन (नाना सुखम्) विविध प्रकार के सुख का (विहारम्) साथ निवास (परमम् सुखम् च चिन्तयेत्) और परम सुख का ध्यान करे, (शिवशक्तिसमायोगात्) शिव और शक्ति के मिलन से (भूवि) पृथिवी पर ही (एकान्तम्) पूर्ण नित्य (आनन्दम्) आनन्द की भावना करे (स्वयम् च) और स्वयम् ब्रह्ममय (भूत्वा) होकर (अहम् ब्रह्म इति भावयेत्) मैं ब्रह्म हूँ इस प्रकार की भावना करे। (देवानाम् अपि दुर्लभा) देवों के लिए भी दुर्लभ (योनिमुद्रा परम् गोप्या) योनिमुद्रा गुप्त रखने योग्य है। (सकृत् तु लाभसंसिद्धिः) एक बार भी

सिद्धिलाभ होने पर (सः) वह साधक (समाधिस्थः एव) समाधि में ही है, यह समझना चाहिए।

भावार्थः- सिद्धासन लगाकर अंगूठा तर्जनी (पहली अंगुली) मध्य अंगुली तथा अनामिका आदि अंगुलियों से कान, आँख, नाक, मुख को बन्द करके काकी प्राणायाम की विधि से प्राणवायु को अन्दर लेकर अपानवायु से संयुक्त करे, उसके अनन्तर 'हुं हंसः' मन्त्र के साथ मूलाधार स्वाधिष्ठान मणिपूर अनाहत विशुद्ध और आज्ञाचक्रों का क्रमशः ध्यान करके सोयी हुई कुण्डलिनी को जगाए तथा जीव के (प्राण के) साथ उसे ऊपर उठाकर अपने वश में करे। इसप्रकार स्वयम् शक्तियुक्त होकर शिव के साथ पूर्ण मिलन, विविध प्रकार के सुख और परम विहार के सुख का चिन्तन करे, एवं शिवशक्ति के मिलन से सम्पूर्ण और नित्य आनन्द की भावना करे तथा स्वयं ब्रह्ममय होकर 'अहम् ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूँ) यह भावना करे। यह योनिमुद्रा देवों को भी दुर्लभ है अतः इसे गुप्त रखो, एक बार इस योनिमुद्रा का लाभ होने पर साधक समाधिस्थ हो रहता है।

ब्रह्महा भ्रूणहा चैव सुरापी गुरुतल्पगः।
एतैः पापैः न लिप्यन्ते योनिमुद्रानिबन्धनात्।।45।।
यानि पापानि घोराणि उपपापानि यानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति योनिमुद्रा निबन्धनात्।।46।।
तस्मादभ्यसनं कुर्यात् यदि मुक्तिं समिच्छति।

अन्वयः- योनिमुद्रा निबन्धनात् ब्रह्महा भ्रूणहा सुरापी गुरुतल्पगः च एतैः पापैः न लिप्यन्ते, यानि घोराणि पापानि उपपापानि च तानि सर्वाणि योनिमुद्रा निबन्धनात् नश्यन्ति। तस्मात् यदि मुक्तिम् समिच्छति अभ्यसनम् कुर्यात्।

पदार्थः- (योनिमुद्रानिबन्धनात्) योनिमुद्रा करने से (ब्रह्महा) ब्रह्महत्या करने वाला (भ्रूणहा) गर्भपात करने वाला (सुरापी) मदिरा पीने वाला (गुरुतल्पगः) गुरुपत्नी के साथ व्यभिचार करने वाला (एतैः पापैः) इन महापापों से (न लिम्पन्ति) इन पापों के फलों में

नहीं फँसते। (यानि घोराणि पापानि) जो भी घोर पाप हैं (उपपापानि च) और सामान्य पाप है (तानि सर्वाणि) वे सभी (योनिमुद्रा निबन्धनात्) योनिमुद्रा के अभ्यास से (नश्यन्ति) नष्ट हो जाते हैं। (तस्मात्) इसलिए (यदि मुक्तिम् समिच्छति) जो कोई मोक्ष की कामना करता है, वह (अभ्यसनम् कुर्यात्) इस मुद्रा का अभ्यास करे।

भावार्थः- योनिमुद्रा के अभ्यास से ब्रह्महत्या, गर्भपात, मदिरापान, गुरुपत्नी के साथ सम्भोग, जिन्हें भारतीय संस्कृति में महापाप माना जाता है, वे सभी पाप प्रभावहीन हो जाते हैं, जो भी घोर या सामान्य पाप हैं वे योनिमुद्रा के अभ्यास से नष्ट हो जाते हैं। इसलिए जो भी मुक्ति चाहता है, उसे इस मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए।

वज्रोलिमुद्राः-

धरामवष्टभ्य करयोस्तलाभ्याम्
ऊर्ध्वं क्षिपेत्पादयुगं शिरः खे।
शक्तिप्रबोधाय चिरजीवनाय
वज्रोलिमुद्राम्मुनयो वदन्ति।।47।।

अन्वयः- शक्तिप्रबोधाय चिरजीवनाय करयोः तलाभ्याम् धराम् अवष्टभ्य पादयुगम् शिरः खे ऊर्ध्वम् क्षिपेत्, (इमाम्) मुनयः वज्रोलिमुद्राम् वदन्ति।

पदार्थः- (शक्तिप्रबोधाय) कुण्डलिनी प्राणशक्ति को जागृत करने के लिए (चिरजीवनाय) दीर्घजीवी होने के लिए (करयोः तलाभ्याम्) दोनों हाथों की हथेली से (धराम् अवष्टभ्य) पृथिवी पकड़कर (पादयुग्मम् शिरः) दोनों पैर और शिर को (ऊर्ध्वम् खे क्षिपेत्) ऊपर आकाश में उठाये। इसे (मुनयः) मुनिलोग (वज्रोलिमुद्राम् वदन्ति) वज्रोलि मुद्रा कहते हैं।

अयं योगे योगश्रेष्ठो योगिनां मुक्तिकारणम्।
अयं हितप्रदो योगो योगिनां सिद्धिदायकः।।48।।
एतद् योगप्रसादेन बिन्दुसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम्।

सिद्धे बिन्दौ महायत्ने किं न सिद्धयति भूतले।।49।।
भोगेन महता युक्तो यदि मुद्रां समाचरेत्।
तथापि सकला सिद्धिर्भवति तस्य निश्चितम्।।50।।

अन्वयः- योगे अयं योगः श्रेष्ठः योगिनाम् मुक्तिकारणम्, अयं हितप्रदो योगः योगिनाम् सिद्धिदायकः एतद्योगप्रसादेन बिन्दुसिद्धिः ध्रुवम् भवेत्, महायत्ने बिन्दौ सिद्धे भूतले किम् न सिद्धयति, भोगेन महता युक्तः यदि मुद्राम् समाचरेत्, तस्य तथा अपि सकला सिद्धिः निश्चितम् भवति।

पदार्थः- (योगे अयम् श्रेष्ठः) योग की साधनाओं में यह श्रेष्ठ है, (योगिनाम्) योगियों की (मुक्तिकारणम्) मुक्ति का कारण है। (अयं योगः हितप्रदः) यह योग हितकारक है, (योगिनां सिद्धिप्रदायकः) योगियों को सिद्धि प्रदान करता है। (एतद् योगप्रसादेन) इस योग के प्रभाव से (बिन्दुसिद्धिः ध्रुवम् भवेत्) वीर्यरक्षा में पूर्ण सिद्धि निश्चय ही हो जाती है, (महायत्ने बिन्दौ सिद्धे) बहुत प्रयत्नसाध्य ब्रह्मचर्य के सिद्ध होने पर (किम् न सिद्धयति) क्या नहीं सिद्ध होता? अर्थात् सभी कुछ सिद्ध हो जाता है, (भोगेन महता युक्तः अपि) भोगों में बहुत पड़ा हुआ व्यक्ति भी (यदि मुद्राम् समाचरेत्) यदि इस मुद्रा का अभ्यास करे तो (तस्य सकला सिद्धिः) उसको सम्पूर्ण सिद्धियाँ (निश्चितम् भवति) निश्चय ही मिल जाती हैं।

भावार्थः- यह मुद्रारूपी योग सब प्रकार के योगों में श्रेष्ठ है यह योगियों को मोक्ष में कारण है, यह योग हितकारक है और योगियों को सिद्धियाँ प्रदान करता है, इस योग के प्रभाव से ब्रह्मचर्य सिद्ध होता है, बहुत प्रयत्न से ब्रह्मचर्य के सिद्ध होने पर सब कुछ सिद्ध हो जाता है। भोगों में बहुत फँसा हुआ व्यक्ति भी यदि इस मुद्रा का अभ्यास करता है, तो उसे निश्चय ही समस्त सिद्धियाँ मिल जाती हैं।

शक्तिचालिनीमुद्राः-

मूलाधारे आत्मशक्तिः कुण्डली परदेवता।

शयिता भुजगाकारा सार्धत्रिवलयान्विता।।51।।
यावत्सा निद्रिता देहे तावद् जीवः पशुर्यथा।
ज्ञानं न जायते तावत् कोटियोगं समभ्यसेत्।।52।।
उद्घाटयेत्कपाटञ्च यथा कुञ्चिकया हठात्।
कुण्डलिन्याः प्रबोधेन ब्रह्मद्वारम्प्रभेदयेत्।।53।।

अन्वयः- परदेवता आत्मशक्तिः कुण्डलीमूलाधारे सार्धत्रिवलयान्विता भुजगाकारा शयिता, यावत् सा देहे निद्रिता तावत् जीवः यथा पशुः , कोटियोगम् समभ्यसेत् ज्ञानं न जायते, (तस्मात्) यथा कुञ्चिकया हठात् कपाटम् उद्घाटयेत् तथा कुण्डलिन्याः प्रबोधेन ब्रह्मद्वारम् प्रभेदयेत्।

पदार्थः- (परदेवता) मानव शरीर में सर्वश्रेष्ठ देवता (आत्मशक्तिः कुण्डली) आत्मा की प्रधानशक्ति कुण्डली (मूलाधारे) मूलाधार के निकट (सार्धत्रिवलयान्विता भुजगाकारा) सर्प के समान साढ़ेतीन वलयों से युक्त (शयिता) सोयी हुई है, (यावत् सा निद्रिता) जब तक वह सोयी हुई है, (कोटियोगम् समभ्यसेत्) असंख्ययोगों का अभ्यास करे तो भी (तावत् ज्ञानम् न जायते) तब तक ज्ञान नहीं होता, जब तक यह निद्रा में है। इसलिए (यथा कुञ्चिकया हठात् कपाटम् उद्घाटयेत्) जिस प्रकार कुञ्ची से हठसहित अर्थात् अवश्य ही द्वार को खोलते हैं, उसी प्रकार (ब्रह्मद्वारम् प्रभेदयेत्) ब्रह्मद्वार को खोले।

भावार्थः- शरीर में विद्यमान सर्वश्रेष्ठ देवता प्राणशक्ति कुण्डलिनी मूलाधार के निकट सर्प के समान साढ़े तीन वलय युक्त होकर जब तक सोयी हुई है, तब तक मनुष्य पशु के समान है। भले ही वह कितना ही योगाभ्यास करे उसे ज्ञान नहीं होता। इसलिए जिस प्रकार ताले से युक्त द्वार को कुञ्जी से खोला जाता है, उसी प्रकार कुण्डलिनी को जागृत करके ब्रह्मद्वार को खोले अर्थात् ब्रह्मग्रन्थि का भेदन करे।

नाभिं संवेष्ट्य वस्त्रेण न च नग्नोबहिःस्थितः।

गोपनीये गृहे स्थित्वा शक्तिचालनमभ्यसेत्।।54।।

अन्वयः- (साधकः) वस्त्रेण नाभिम् संवेष्ट्य न नग्नः, न बहिः स्थितः गोपनीये गृहे स्थित्वा शक्तिचालनम् अभ्यसेत्।

पदार्थः- साधक (वस्त्रेण) वस्त्र के द्वारा (नाभिम्) नाभि को (संवेष्ट्य) वस्त्र से लपेटकर (न नग्नः न बहिस्थितः) न तो नंगा रहकर न बाहर रहकर अपितु (गोपनीये गृहे स्थित्वा) गुप्त घर में बैठकर (शक्तिचालनम् अभ्यसेत्) शक्तिचालन का अभ्यास करे।

भावार्थः- शक्तिचालन का अभ्यास करने के लिए वस्त्र से नाभि को लपेटकर न नग्न होकर बैठे, न ही बाहर बैठे, अपितु ऐसे घर में बैठे जहाँ कोई न देख सके।

वितस्तिप्रमितं **दीर्घं विस्तारे चतुरङ्गुलम्।**
मृदुलं धवलं सूक्ष्मं वेष्टनाम्बरलक्षणम्।।55।।
एवमम्बरयुक्तं **च कटिसूत्रेण योजयेत्।।56।।**

अन्वयः- दीर्घम् वितस्तिप्रमितम् विस्तारे चतुर् अङ्गुलम् मृदुलम् धवलम् सूक्ष्मम् वेष्टन अम्बरलक्षणम्, एवम् अम्बरयुक्तम् च कटिसूत्रेण योजयेत्।

पदार्थः- (दीर्घम्) लम्बा (वितस्तिप्रमितम्) एक वित्ता नाप का (विस्तारे चतुर् अंगुलम्) चौड़ाई में चार अंगुल (मृदुलम्) कोमल (धवलम्) श्वेत होना यह (वेस्टन-अम्बरलक्षणम्) लपेटने के वस्त्र का लक्षण है। (एवम् अम्बरयुक्तं) इन लक्षणों से युक्त वस्त्र को (कटिसूत्रेण) कमरबन्ध से (योजयेत्) बाँधे।

भावार्थः- नाभि को लपेटने वाला वस्त्र एक वित्त लम्बा और चार अंगुल चौड़ा होना चाहिए साथ ही वह कोमल श्वेत और सूक्ष्म अर्थात् महीन हो, इन लक्षणों से युक्त वस्त्र को करधनी में बाँधे।

भस्मना गात्रसंलिप्तः सिद्धासनं समाचरेत्।
नासाभ्याम्प्राणमाकृष्य **अपाने** योजयेत् **बलात्।।57।।**

तावदाकुञ्चयेद् गुह्यं शनैरश्विनि मुद्रया।
यावद् गच्छेत् सुषुम्नायां हठात् वायुः प्रकाशयेत्।।58।।

अन्वयः- भस्मना गात्रसंलिप्तः सिद्धासनं समाचरेत्, नासाभ्याम् प्राणम् आकृष्य बलात् अपाने योजयेत्, अश्विनी मुद्रया शनैः गुह्यम् तावत् आकुञ्चयेत् यावत् वायुः सुषुम्नायाम् हठात् गच्छेत् प्रकाशयेत् (च)।

पदार्थः- (भस्मानागात्रसंलिप्तः) भस्म को सम्पूर्ण शरीर में लेप करके (सिद्धासनम् समाचरेत्) सिद्धासन लगाये, तथा (नासाभ्याम्) दोनों नाक के छिद्रों से (प्राणम् आकृष्य) प्राणवायु को अन्दर लेकर (बलात्) प्रयत्नपूर्वक (अपाने योजयेत्) अपानवायु से संयुक्त करे (अश्विनीमुद्रया) अश्विनी मुद्रा के द्वारा (गुह्यम् तावत् आकुञ्चयेत्) गुप्त इन्द्रियों अर्थात् गुदा और लिङ्ग को स्त्री साधिका गुदा और योनि को तब तक सिकोड़े (यावत् वायुः सुषुम्नायाम्) जब तक प्राण और अपान वायु संयुक्त रूप से सुषुम्ना नाडी में (हठात् गच्छेत्) बलपूर्वक प्रवेश न कर लें (प्रकाशयेत्) और प्रकाशित करे।

भावार्थः- शक्तिचालन के लिए साधक शरीर में भस्म लगाकर सिद्धासन में बैठकर नासिका के दोनों छिद्रों से पूरक करके प्रयत्नपूर्वक (उड्डीयानबन्ध द्वारा) अपानवायु से संयुक्त करे और अश्विनी मुद्रा द्वारा गुप्त इन्द्रियों (गुदा और लिङ्ग) योनि को प्रयत्न पूर्वक तब तक सिकोड़े अर्थात् मूलबन्ध करे, जब तक वायु सुषुम्ना में प्रवेश करके प्रकाशित न करे अर्थात् जब तक स्पष्ट बोध न हो जाए कि प्राणों का प्रवेश सुषुम्णा में प्रवेश हो गया है।

तदा वायुप्रबन्धेन कुम्भिका च भुजङ्गिनी।
बद्धश्वासस्ततो भूत्वा ऊर्ध्वमार्गम्प्रपद्यते।।59।।
विना शक्तिं चालनेन योनिमुद्रा न सिद्धयति।
आदौ चालनमस्यास्तु योनिमुद्रां समभ्यसेत्।।60।।

अन्वयः- तदा वायुप्रबन्धेन कुम्भिकाबद्धश्वासः भूत्वा ततः भुजङ्गिनी ऊर्ध्वमार्गम् प्रपद्यते। शक्तिं चालनेन विना योनिमुद्रा न सिद्ध्यति (अतः) आदौ तु अस्याः चालनम् (कुर्यात् ततः) योनिमुद्राम् समभ्यसेत्।

पदार्थः- (तदा) तब (वायुप्रबन्धेन) प्राणायाम द्वारा (कुम्भिकाबद्धश्वासः भूत्वा) कुम्भक में स्थिर हो, इससे (भुजङ्गिनी) प्राणशक्ति कुण्डलिनी (ऊर्ध्वमार्गम् प्रपद्यते) ऊपर की ओर चढ़ने लगती है। (शक्तिं चालनेन विना) कुण्डलिनी को उर्ध्वगामी किये विना (योनिमुद्रा न सिद्ध्यति) योनिमुद्रा सिद्ध नहीं होती। इसलिए (आदौ अस्याः चालनम्) पहले इसको जागृत करके ऊर्ध्वगामी करे, उसके बाद (योनिमुद्रां समभ्यसेत्) योनिमुद्रा का अभ्यास करे।

भावार्थः- प्राणायाम में कुम्भक द्वारा उड्डीयनबन्ध के साथ श्वास रोकने पर कुण्डलिनी ऊपर को चलती है। शक्तिचालन के विना योनिमुद्रा सिद्ध नहीं होती। अतः साधक को चाहिए कि पहले कुण्डलिनी को जागृत करे, उसके बाद ही योनिमुद्रा का अभ्यास प्रारम्भ करे।

इति ते कथितं चण्डकपाले शक्तिचालनम्
गोपनीयं प्रयत्नेन दिने दिने समभ्यसेत्।।61।।

अन्वयः- चण्डकपाले इति प्रयत्नेन गोपनीयम् शक्तिचालनम् ते कथितम्, दिने दिने प्रयत्नेन समभ्यसेत्।

पदार्थः- (चण्डकपाले) हे चण्डकपालि! (इति) इस प्रकार मैंने (प्रयत्नेन गोपनीयम्) प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखने योग्य (शक्तिचालनम्) प्राणशक्ति कुण्डलिनी के जागरण की विधि (ते कथितम्) तुम्हें बतायी है, (दिने दिने) प्रतिदिन (प्रयत्नेन समभ्यसेत्) प्रयत्नपूर्वक इसका अभ्यास करना चाहिए।

भावार्थः- घेरण्ड राजा चण्डकपालि से कहते हैं कि मैंने तुम्हें गुप्त रखने योग्य प्राणशक्ति कुण्डलिनी को जागृत करने की विधि

बताई है, प्रयत्नपूर्वक प्रतिदिन इसका अभ्यास करना चाहिए।

मुद्रेयं परमागोप्या जरामरणनाशिनी।
तस्मादभ्यसनं कार्यं योगिभिः सिद्धिकांक्षिभिः।।62।।
नित्यं योऽभ्यसते योगी सिद्धिस्तस्य **करे स्थिता।**
तस्य विग्रहसिद्धिः स्याद्रोगाणां **संक्षयो भवेत्।।63।।**

अन्वयः- परमा गोप्या जरामरणनाशिनी इयम् मुद्रा तस्मात् सिद्धिकांक्षिभिः योगिभिः (अस्याः) अभ्यस्नम् कार्यम्। यः योगी नित्यम् अभ्यसते तस्य करे सिद्धिः स्थिता, तस्य विग्रहसिद्धिः स्यात्, रोगाणाम् च संक्षयः भवेत्।

पदार्थः- (परमा गोप्या) अत्यन्त गोपनीय (इयम् मुद्रा) यह मुद्रा (जरामरणनाशिनी) बुढ़ापा और मृत्यु को नष्ट करती है। (तस्मात्) इसलिए (सिद्धिकांक्षिभिः योगिभिः) सिद्धि चाहने वाले योगी इसका (अभ्यसनम् कार्यम्) अभ्यास करें। (यः योगी) जो योगी (नित्यम् अभ्यसते) इसका नित्य अभ्यास करता है (तस्य करे) उसके हाथ में (सिद्धिः स्थिता) सिद्धि स्थित है, (रोगाणाम् च संक्षयः भवेत्) और उसके सभी रोगों का विनाश हो जाता है।

भावार्थः- अत्यन्त गोपनीय यह मुद्रा बुढ़ापा और मृत्यु का नाश करती है, अतः सिद्धि चाहने वाले योगियों को चाहिए कि वे इसका अभ्यास करें। जो योगी इसका नित्य अभ्यास करते हैं, सिद्धि सदा उनके हाथ में होती है, इन्हें अपने शरीर पर पूर्ण अधिकार हो जाता है और उनके सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।

तडागीमुद्राः-

उदरं पश्चिमोत्तानं **कुर्याच्च** तडागाकृतिः।
तडागी सा परा मुद्रा जरामृत्यु विनाशिनी।।64।।

अन्वयः- उदरम् पश्चिमोत्तानम् तडाग-आकृतिः कुर्यात्। जरामृत्युविनाशिनी सा तडागी परामुद्रा (अस्ति)

पदार्थः- (उदरम्) पेट को (पश्चिमोत्तानम्) पीठ की ओर तानकर (तडाग-आकृतिः कुर्यात्) तालाब की आकृति का करे (जरामरणनाशिनी सा) बुढ़ापा और मृत्यु को नष्ट करने वाली यह (परा मुद्रा) मुद्रा अत्यन्त श्रेष्ठ है।

भावार्थः- तडागी मुद्रा को करने के लिए पेट को पीछे की ओर इतना ताने कि पेट तालाब की आकृति का बन जाए। यह अत्यश्रेष्ठ मुद्रा है, जो वृद्धावस्था और मृत्यु को नष्ट करती है।

माण्डूकी **मुद्राः-**

मुखं सम्मुद्रितं **कृत्वा** जिह्वामूलम्प्रचालयेत्।
शनैर्ग्रसेदमृतं **तां** माण्डूकीम्मुद्रिकां **विदुः।।65।।**
वलितं पलितं नैव जायते नित्ययौवनम्।
न केशे जायते पाको यः कुर्यान्नित्यमाण्डुकीम्।।66।।

अन्वयः- मुखम् सम्मुद्रितम् कृत्वा जिह्वामूलम् प्रचालयेत्, शनैः अमृतम् ग्रसेत् ताम् माण्डूकीम् मुद्रिकाम् विदुः। यः माण्डूकीम् नित्यम् कुर्यात् (तस्य) वलितम् पलितम् नैव जायते, यौवनम् नित्यम् (तिष्ठति) केशे पाकः न जायते।

पदार्थः- (मुखम् सम्मुद्रितम् कृत्वा) मुख को बन्द करके (जिह्वामूलम् प्रचालयेत्) जिह्वा के मूल को चलाये, (शनैः अमृतम् ग्रसेत्) धीरे अमृत का पान करे (तां माण्डूकीम् मुद्रिकाम् विदुः) इसे माण्डूकी मुद्रा कहते हैं। (यः नित्यम्) जो प्रतिदिन (माण्डूकीम् कुर्यात्) माण्डूकी मुद्रा करता है, उसे (वलितम् पलितम्) झुर्रियाँ पड़ना, बाल श्वेत होना (नैव जायते) नहीं होता (नित्यम् यौवनम्) यौवन सदा बना रहता है (केशेषु पाकः न जायते) बाल नहीं पकते।

भावार्थः- माण्डूकी मुद्रा के लिए साधक मुख को भलीप्रकार बन्द करके जिह्वा के मूल को चलाये और धीरे धीरे अमृत का पान करे। जो नित्य माण्डूकी मुद्रा का अभ्यास करता है, उसके न बाल श्वेत होते हैं, न शरीर में झुर्रियाँ पड़ती हैं।

शाम्भवी मुद्राः-

नेत्राञ्जनं समालोक्य आत्मारामं निरीक्षयेत्।
सा भवेच्छाम्भवीमुद्रा सर्वतन्त्रेषु गोपिता।।67।।
वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिकाः इव।
इयं तु शाम्भवीमुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव।।68।।

अन्वयः- नेत्राञ्जनम् समालोक्य आत्मारामम् निरीक्षयेत्। सा सर्वतन्त्रेषु गोपिता शाम्भवीमुद्रा भवेत्। वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव। इयम् शाम्भवीमुद्रा तु कुलवधूः इव गुप्ता।

पदार्थः- (नेत्राञ्जनम्) भौहों को (समालोक्य) देखकर (आत्मारामम्) आत्मतत्त्व को (निरीक्षयेत्) मन से देखे (सा) वह (सर्वतन्त्रेषु गोपिता) सभी साधनाओं में गुप्त रखी गयी। (शाम्भवीमुद्रा भवेत्) शाम्भवी मुद्रा है। (वेदशास्त्रपुराणानि) वेदशास्त्र और पुराण (सामान्यगणिका इव) सामान्य वेश्या के समान सबको सुलभ है (इयम् शाम्भवी मुद्रा तु) यह शाम्भवीमुद्रा तो (कुलवधूः इव गुप्ता) कुलवधू के समान गुप्त है।

भावार्थः- नेत्र से ऊपर की काली काली भौहां पर दृष्टि स्थिर करके आत्मतत्त्व का चिन्तन करे, यह शाम्भवी मुद्रा है जिसे सभी साधना परम्पराओं में गुप्त रखा गया है। वेदशास्त्र और पुराण तो सामान्य गणिका (वेश्या) के समान सबके लिए सुलभ है, किन्तु यह शाम्भवीमुद्रा कुलवधू के समान संरक्षित है, सबको सुलभ नहीं है।

स एव आदिनाथश्च स च नारायणः स्वयम्।
स च ब्रह्मा सृष्टिकरो यो मुद्रां वेत्ति शाम्भवीम्।।69।।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमुक्तं महेश्वर!
शाम्भवीं यो विजानीयात् स च ब्रह्मा न चान्यथा।।70।।

अन्वयः- यः शाम्भवीं मुद्रां वेत्ति स एव आदिनाथ स च स्वयम् नारायणः स च सृष्टिकरः ब्रह्मा (अस्ति)। महेश्वर! सत्यं सत्यम् पुनः

सत्यम् सत्यम् उक्तम्, यः शाम्भवीम् मुद्रां विजानीयात् स च ब्रह्मा अन्यथा च न।

पदार्थः- (यः शाम्भवीम् मुद्राम् विजानाति) जो शाम्भवी मुद्रा को जानता है (सः एव आदिनाथः) वही आदिनाथ शिव है, (स च स्वयम् नारायणः) वह स्वयम् विष्णु है (स च सृष्टिकरः ब्रह्मा) और वही सृष्टि की रचना करने वाला ब्रह्मा है। (महेश्वर) हे महेश्वर शिव! (सत्यम् सत्यम् पुनः सत्यम् उक्तम्) आपने सर्वथा सत्य कहा है (यः शाम्भवीम् विजानीयात्) जो शाम्भवी मुद्रा को जाने (स च ब्रह्मा) वही ब्रह्मा है (अन्यथा च न) अन्यथा ब्रह्मा नहीं है।

भावार्थः- जो शाम्भवी मुद्रा को जानता है वही शिव विष्णु और सृष्टि की रचना करने वाला ब्रह्मा है। हे महेश्वर! आपने पूर्ण सत्य कहा है कि जो शाम्भवी मुद्रा को जानता है, वह स्वयं सृष्टि की रचना करने वाला ब्रह्मा है, अन्यथा वह ब्रह्मा नहीं है।

पञ्चभूतधारणाः-

कथिता शाम्भवीमुद्रा **शृणुष्व पञ्चधारणाः।**
धारणानि **समासाद्य किन्न सिध्यति भूतले।।71।।**

अन्वयः- शामभवी मुद्रा कथिता पञ्च भूतधारणाः शृणुष्व, धारणानि समासाद्य भूतले किम् न सिध्यति।

पदार्थः- (शाम्भवीमुद्रा कथिता) मैंने शाम्भवीमुद्रा का कथन कर दिया है, (पञ्चधारणाः) पांच धारणाओं को (शृणुष्व) सुनो। (धारणानि) धारणाओं को (समासाद्य) प्राप्त करके (भूतले) भूमण्डल में (किम् न सिध्यति) क्या सिद्ध नहीं होता? अर्थात् सबकुछ सिद्ध हो जाता है।

भावार्थः- मैंने शाम्भवीमुद्रा अभी बता दी है, अब पांच धारणाओं को सुनो धारणाओं के सिद्ध हो जाने पर सब कुछ सिद्ध हो जाता है।

अनेन नरदेहेन स्वर्गेषु गमनागमम्।

मनोगतिर्भवेत्तस्य खेचरत्वं न चान्यथा।।72।।

अन्वयः- अनेन नरदेहेन स्वर्गेषु गमन-आगम्, तस्य मनोगतिः खेचरत्वम् भवेत् अन्यथा न।

पदार्थः- (अनेन नरदेहेन) इस मनुष्य शरीर से (स्वर्गेषु) स्वर्ग में (गमन-आगमन) जाना-आना (मनोगतिः खेचरत्वम्) मन के समान तीव्रगति और आकाश में विचरण की योग्यता इन धारणाओं से मिल जाती है। (न च अन्यथा) इनके विना नहीं मिलती।

भावार्थः- पाँच धारणाओं की साधना से मनुष्य इसी शरीर से स्वर्ग में आ जा सकता है, वह मन के समान क्षण में ही कहीं पहुँच सकता है, आकाश में भी विचरण की योग्यता उसमें आ जाती है।

पृथिवीधारणा (मुद्रा):-

यत्तलं हरितालदेशरचितं **भौमं** लकारन्वितम्।
वेदाँस्तं कमलासनेन **सहितं कृत्वा हृदि** स्थापितम्।
प्राणाँस्तत्र विनीय पञ्चघटिकां चित्तान्वितान् **धारयेत्**
एषा स्तम्भकरी भवेत् क्षितिजयं कुर्यादधो धारणाम्।।73।।
पृथिवीधारणामुद्रां यः करोति तु नित्यशः।
मृत्युञ्जयः स्वयं सोऽपि सः सिद्धो विचरेद् भूवि।।74।।

अन्वयः- हरितालदेशरचितम् लकारान्वितम् **यत् भौमम् तत्त्वम्** वेदाँस्तम् कमलासनेन सहितम् **हृदि स्थापितम् कृत्वा** चित्तान्वितान् प्राणान् विनीय पञ्चघटिकाम् **धारयेत्, एषा** स्तम्भकरी **भवेत्,** क्षितिजयम् अधो धारणाम् कुर्यात्। यः तु पृथिवीधारणामुद्राम् **नित्यशः करारेति** सः **स्वयम्** मृत्युञ्जयः, सः अपि सिद्धः भूवि **विचरेत्।**

पदार्थः- (हरितालदेशरचितम्) **जिसका अन्तःप्रदेश** हरिताल **अर्थात् पीले** रंग से रंगा हुआ है (लकारान्वितम्) **जो** बीजाक्षर लकार **से युक्त है** ऐसा (यत्) **जो** (भौमं तत्त्वम्) पृथिवी तत्त्व है (वेदाँस्तम्) वेद जिनके हाथ है, **उन** (कमलासनेन सहितम्) कमल

पर विराजमान ब्रह्मा के साथ (हदि स्थापितम् कृत्वा) हृदय में स्थापित करके (चित्तान्वितान् प्राणान् विनीय) वहाँ चित्तसहित प्राणों को ले जा करके (पञ्च घटिका:) पाँच घटी अर्थात् दो घण्टे (धारयेत्) धारण करे। (एषा स्तम्भकरी) यह धारणा स्थिरता देती है, (क्षितिजयम् अधोधारणाम् कुर्यात्) पृथिवी तत्त्व पर विजय प्रदान करने वाली (अधो: धारणाम्) नीचे स्थित मूलाधारचक्र में धारणा अर्थात् पृथिवी धारणा को (कुर्यात्) करे। (य: तु) जो (पृथिवीधारणामुद्राम्) पृथिवीधारणा नामक मुद्रा को (नित्यश: करोति) प्रतिदिन करता है (स: स्वयम् मृत्युञ्जय:) वह स्वयं मृत्यु को जीत लेता है (स: सिद्ध: अपि) वह सिद्ध होकर (भुवि विचरति) पृथिवी पर विचरता है।

भावार्थ:- पृथिवीतत्त्व का स्थान मूलाधार चक्र है जो सबसे नीचे है इसीकारण यहाँ पृथिवीधारणा को अधोधारणा भी कहा है। मूलाधारचक्र चतुष्कोण है और हरितालरंग अर्थात् पीले रंग का है, पृथिवी बीजाक्षर ल (लँ) इसके केन्द्र में है, वेद जिनके हाथ में है, वे ब्रह्मा इस स्थान के देवता हैं। हृदय में चक्र में पृथिवीतत्त्व पर चित्त को प्राणों सहित स्थिर करके वहीं विलय कर देना पृथिवी धारणा है। जो पाँच घटी अर्थात् दो घंटे इस पृथिवी धारणा नामक मुद्रा का अभ्यास करता है उसका चित्त स्थिर हो जाता है, वह मृत्यु को जीत लेता है और सिद्ध होकर पृथिवी पर विचरता है।

आम्भसी धारणामुद्रा:-

शंखेन्दुप्रतिमं **च** कुन्दधवलं **तत्त्वं किलालं शुभम्।**
तत्पीयूषवकारबीजसहितं **युक्तं सदा विष्णुना।।**
प्राणांस्तत्र **विलीय** पञ्चघटिकां चित्तान्वितो **धारयेत्।**
तेषां दु:सहतापपापहरिणी स्यादाम्भसी **धारणा।।75।।**
आम्भसीम्परमाम्मुद्रां **यो जानाति स** योगवित्।
जले च घोरे गम्भीरे मरणं तस्य न विद्यते।।76।।
इयन्तु परमामुद्रा गोपनीया **प्रयत्नत:।**

प्रकाशात् सिद्धिहानिः स्यात् सत्यं वच्मि च तत्त्वतः।।77।।

अन्वयः- (जलस्थान-स्वाधिष्ठान-चक्र) शंख-इन्दुप्रतिमम् कुन्द-धवलम् कीलालं शुभम् तत् पीयूष-वकारबीजसहितम् सदा विष्णुना युक्तम् (अस्ति) तत्र चित्तान्वितः प्राणान् विलीय (यः) पञ्च घटिकां धारयेत्, तेषाम् दुःसहतापपापहरिणी आम्भसी धारणा स्यात्। यः आम्भसीम् परमाम् मुद्राम् जानाति सः योगवित्, तस्य घोरे गम्भीरे (अपि) जले मरणम् न विद्यते। इयम् परमा मुद्रा तु प्रयत्नतः गोपनीया, सत्यम् तत्त्वतः वच्मि प्रकाशात् सिद्धिहानिः स्यात्।

पदार्थः- जलतत्त्व का स्थान स्वाधिष्ठानचक्र (शंख-इन्दुप्रतिमम्) शंख और चन्द्रमा के समान (कुन्दधवलं) कुन्द के फूल के समान श्वेत, (कीलालं शुभम्) कीलाल अर्थात् पनीर के समान शुभ श्वेत है, (तत्पीयूषवकारबीजसहितम्) उसके अमृत और वकार अर्थात् वँ बीजाक्षर सहित (सदा विष्णुना युक्तं) सर्वदा अधिष्ठातृ देवता विष्णु के साथ है। (तत्र) उसमें (चित्तान्वितः प्राणान् विलीय) चित्त के साथा-साथ प्राणों को स्थिर करके (पञ्चघटिकाम्) पाँच घटी अर्थात् दो घण्टे (धारयेत्) धारणा करे (तेषाम्) उन धारण करने वालों के (दुःसहतापपापहरिणी) अत्यन्त कष्टदायी ताप अर्थात् कष्ट और पापों को हर लेने वाली (आम्भसीधारणा स्यात्) जलतत्व की धारणा होती है (यः आम्भसीम् मुद्राम्) जो इस जलधारणा को (जानाति) जानता है, (सः योगवित्) वह योग को जानने वाला है। (घोरे गम्भीरे जले) भयंकर गहरे जल में भी (तस्य मृत्यु न विद्यते) उसकी मृत्यु नहीं होती। (इयम् परमा मुद्रा तु) यह विशिष्ट मुद्रा (प्रयत्नतः गोपनीया) प्रयत्न के साथ गुप्त रखने योग्य है, (सत्यम् तत्त्वतः वच्मि) मैं यथार्थ में सत्य बता रहा हूँ। (प्रकाशात्) इसको प्रकाशित करने के कारण (सिद्धिहानिः स्यात्) जो सिद्धि प्राप्त है वह नष्ट हो जायेगी।

भावार्थः- जलतत्त्व का स्थान स्वाधिष्ठान चक्र है, इसका रंग चन्द्रमा कुन्दका फूल और कीलाल की भाँति श्वेत है। इसमें अमृत का वास है व अर्थात् वँ इसका बीजाक्षर है, विष्णु इसके अधिष्ठातृ

देवता हैं, इसमें चित्तसहित प्राणों को विलीन करके पाँच घटी अर्थात् दो घंटे धारणा करना आम्भसी धारणा अर्थात् जलतत्त्व की धारणा है। जो इस आम्भसी धारणा को जानता है, वह योग को जानता है, भयंकर गहरे जल में भी उसकी मृत्यु नहीं होती। यह महत्त्वपूर्ण मुद्रा अत्यन्त गोपनीय है। ग्रन्थकार बल देकर कहता है कि जो इसे प्रकाशित करता है, उसकी सिद्धियाँ नष्ट हो जाती हैं।

आग्नेयी धारणाः-

यन्नाभिस्थितमिन्द्रगोपसदृशं **बीजं** त्रिकोणान्वितम्।
तत्त्वं वह्निमयम्प्रदीप्तमरुणं **रुद्रेण** यत्सिद्धिदम्।
प्राणाँस्तत्र विलीय पञ्चघटिकां चित्तान्वितं **धारयेत्।**
तेषां कालगभीरभीतिहरिणी वैश्वानरी **धारणा।।78।।**
प्रदीप्ते ज्वलिते वह्नै पतितो यदि साधकः।
एतन्मुद्रा **प्रसादेन स जीवति न मृत्युभाक्।।79।।**

अन्वयः- यत् नाभिस्थितम् इन्द्रगोपसदृशम् त्रिकोणान्वितम् बीजम् प्रदीप्तम् अरुणम् रुद्रेण (अधिष्ठितम्) सिद्धिदम् वह्निमयम् यत् तत्त्वम् तत्र चित्त-अन्वितम् प्राणान् विलीय पञ्च घटिकाम् धारयेत्, तेषाम् वैश्वानरी धारणा कालगभीरभीतिहरिणी (भवति) एतत्मुद्राप्रसादेन साधकः यदि प्रदीप्ते वह्नौ पतितः सः जीवति मृत्युभाक् न (भवति)।

पदार्थः- (यत् नाभिस्थितम्) नाभि में स्थित जो (इन्द्रगोपसदृशम्) इन्द्रगोप अर्थात् वीरबहूटी के सदृश रक्तवर्ण (त्रिकोणयुक्तम् रं बीजम्) त्रिकोणयुक्त रँ बीज है (प्रदीप्तम् अरुणम्) अतिशय दीप्तियुक्त लाल (रुद्रेण) रुद्र से अधिष्ठित (सिद्धिम्) सिद्धि प्रदान करने वाला (वह्निमयम् यत् तत्त्वम्) जो अग्नितत्त्व है, (तत्र चित्त-अन्वितम्) वहाँ पर चित्तसहित (प्राणान् विलीय) प्राणों को स्थिर करके (पञ्चघटिकाम् धारयेत्) पाँच घटी अर्थात् दो घण्टे धारणा करे (तेषाम्) उनकी (वैश्वानरी धारणा) यह आग्नेय धारणा (कालगभीरभीतिहरिणी) मृत्यु के महान् भय को हर लेने वाली होती है। (एतत् मुद्रा प्रसादेन) इस मुद्रा के फलस्वरूप (साधकः यदि वह्नौ पतितः) साधक यदि अग्नि में गिर जाये तथापि (सः जीवति) वह

जीवित रहता है (मृत्युभाक् न भवति) मृत्यु का ग्रास नही बनता।

भावार्थः- नाभि के निकट सुषुम्ना नाड़ी के अन्दर अग्नितत्त्वमय मणिपूर चक्र है जिसका वर्ण इन्द्रगोप (वीरबहूटी) कीड़े के समान शुद्ध लाल है 'रं' इसका बीजाक्षर है और रुद्र इसके अधिष्ठातृ देवता है। इस अग्नितत्त्व के स्थान मणिपूरचक्र में चित्त और प्राणों को ले जाकर करके जो पाँच घटी अर्थात् दो घण्टे धारणा की जाती है, उसे आग्नेयी धारणा कहते हैं। यह धारणा मृत्यु के महाभय को नष्ट करने वाली है, इस मुद्रा के प्रभाव से साधक प्रदीप्त अग्नि के बीच में पड़ने पर भी जीवित रहता है, मृत्यु उसे अपना ग्रास नहीं बनाती।

वायवीधारणाः-

यद्भिन्नाञ्जनपुञ्जसन्निभमिदं धूम्रावभासम्परम्।
तत्त्वं सत्त्वमयं यकारसहितं यत्रेश्वरो **देवता।**
प्राणांस्तत्र विलीय पञ्चघटिकां चित्तान्वितां **धारयेत्।**
एषा खे गमनं करोति यमिनां स्याद् वायवी धारणा।।80।।
इयन्तु परमामुद्रा जरामृत्युविनाशिनी।
वायुना म्रियते नापि खे च गतिदायिनी।।81।।

अन्वयः- यत् भिन्नाञ्जनपुञ्जसन्निभम् धूमावभासम् यकारसहितम् तत्त्वम् यत्र ईश्वरो देवता, तत्र चित्तान्वितान् **प्राणान् विलीय पञ्च** घटिकाम् धारयेत् एषा वायवी धारणा स्यात्। (इयम्) **यमिनां खे गमनम्** करोति। इयम् परमामुद्रा-जरामृत्युविनाशिनी **खे च** गतिप्रदायिनीः **अस्याः** प्रभावात् साधकाः वायुना न म्रियते।

पदार्थः- (यत् भिन्नाञ्जनपुञ्जसदृशम्) **काजल के चूर्ण के समूह के** समान है (धूम्रावभासम्) **धुवें के सदृश प्रतीत होती है, ऐसा** (यकारसहितम् यत् तत्त्वम्) वायुवाचक **यकार अर्थात् 'यं' बीजाक्षर से युक्त** जो तत्त्व है, (यत्र ईश्वरः देवता) **जहाँ ईश्वर** अर्थात् शिव **अधिष्ठातृ** देवता है (तत्र) **वहाँ** (चित्तान्वितान् **प्राणान्**) चित्तसहित **प्राणों को** (विनीय) ले **जाकर** (पञ्चघटिकाम्) **पाँच** घटी अर्थात् दो **घंटे** (**धारयेत्**) धारणा **करे**। (एषा वायवीधारणा स्यात्) यह

वायवीधारणा है यह (यमिनाम् खे गमनम् करोति) इससे साधक आकाश में गमन का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। (इयम् परमा मुद्रा) यह विशिष्ट मुद्रा (जरामृत्युविनाशिनी) बुढ़ापा और मृत्यु को नष्ट करती है (खे गतिप्रदायिनी) आकाश में विचरण की शक्ति देने वाली है (अस्याः प्रभावात्) इसके प्रभाव से साधक (वायुना न म्रियेत्) वायु से मृत्यु को प्राप्त नहीं करता।

भावार्थः- वायुतत्त्व का स्थान अनाहत चक्र काजल के चूर्ण के समान धुएँ के वर्ण का है 'यं' वायु का बीजाक्षर, इसके मध्य में है ईश्वर (शिव) इसका अधिष्ठातृ देवता है। यहाँ चित्त और प्राणों को स्थिर करके पाँच घटी अर्थात् दो घण्टे स्थिर रहना वायवी धारणा है। इस साधना के फलस्वरूप साधक बुढ़ापा और मृत्यु को जीत लेता है। आकाश गमन का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। उसकी वायुवेग से मृत्यु नहीं होती।

शठाय भक्तिहीनाय न देया यस्य कस्यचित्।
दत्ते चेत्सिद्धिहानिः स्यात् सत्यं वच्मि च चण्ड ते।।82।।

अन्वयः- शठाय भक्तिहीनाय यस्य कस्यचित न देया, दत्ते चेत् सिद्धिहानिः स्यात्, चण्ड ते सत्यम् वच्मि।

पदार्थः- (शठाय) दुष्ट व्यक्ति को (भक्तिहीनाय) भक्तिहीन व्यक्ति को (यस्य कस्यचित्) जिस किसी को (न देया) इसका उपदेश नहीं करना चाहिए (दत्ते चेत्) यदि देता है तो (सिद्धिहानिः स्यात्) सिद्धियाँ नष्ट हो जाएँगी। (चण्ड) हे चण्ड (ते सत्यम् वच्मि) मैं तुमसे सत्य कह रहा हूँ।

भावार्थः- इस वायवी धारणा रूप मुद्रा का उपदेश दुष्ट व्यक्ति भक्तिरहित व्यक्ति को तथा जिस किसी को नहीं करना चाहिए, ऐसे अनधिकारी को उपदेश करने पर सब सिद्धियाँ नष्ट हो जाती हैं।, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

आकाशीधारणाः-

यत्सिन्धौ वरशुद्धवारिसदृशं व्योमम्परम्भाषितम्।

तत्त्वं देवसदाशिवेन **सहितं बीजं** हकारान्वितम्।
प्राणांस्तत्र विनीय पञ्च घटिकां चित्तान्विताम्।
धारयेत् एतां मोक्षकपाटभेदनकरीं **कुर्यान्नभोधारणाम्।।83।।**

अन्वयः- सिन्धौ वरशुद्धवारिसदृशम् परम् व्योमतत्त्वम् देव सदाशिवेन सहितम् हकारबीज-अन्वितम् बीजम् 'हं', तत्र प्राणान् विनीय चित्तान्विताम् पञ्चघटिकाम् धारयेत्। एताम् मोक्षकपाटभेदनकरीम् नभोधारणाम् कुर्यात्।

पदार्थः- (सिन्धौ वरशुद्धवारिसदृशम्) समुद्र में विद्यमान परम शुद्ध जल की आकृति का (यत् परं व्योमतत्त्वम्) जो पर अर्थात् सबसे सूक्ष्म आकाशतत्त्व (देवसदाशिवेन सहितम्) देव सदा शिव से अधिष्ठित (बीजं हकारान्वितम्) 'हं' बीज से युक्त है। (तत्र प्राणान् विनीय) वहाँ प्राणों को ले जाकर (चित्तान्विताम्) वहाँ चित्त को स्थिर करके (पञ्चघटिकाम्) पाँच घटी अर्थात् 2 घंटे (धारयेत्) धारणा करें (मोक्षकपाटभेदनकरीम्) मोक्षका द्वार खोलने वाली (एताम् नभो धारणाम्) इस आकाशी धारणा को (कुर्यात्) नित्य करे।

भावार्थः- समुद्र के निर्मल जल की आकृति वाला आकाशतत्त्व जो सदा शिव देव से अधिष्ठित और आकाशतत्त्व के बीज 'हं' से युक्त है वहाँ प्राणों को ले जाकर चित्त को एकाग्र करके धारणा करे, यह मोक्ष का द्वार खोलने वाली है, इस आकाशीधारणा को साधक नित्य करें।

आकाशीधारणामुद्राम् **यो वेत्ति सैव** योगवित्।
न मृत्युर्जायते तस्य प्रलये नावसीदति।।84।।

अन्वयः- यः आकाशीधारणामुद्राम् वेत्ति स एव योगवित् तस्य मृत्युः न जायते प्रलये (अपि) न अवसीदति।

पदार्थः- (यः) जो (आकाशीधारणामुद्राम्) आकाशीधारणा नाम की मुद्रा को (वेत्ति) जानता है। (स एव) वह ही (योगवित्) योग को जानता है। (तस्य मृत्युः न जायते) उसकी मृत्यु नहीं होती (प्रलये

न अवसीदति) प्रलय में भी वह दुःखी नहीं होता।

भावार्थः- जो आकाशीधारणा नाम की मुद्रा को जानता है वह ही योग को जानता है, उसकी मृत्यु नहीं होती, प्रलय में भी वह दुःखी नहीं होता।

अश्विनीमुद्राः-

आकुञ्चयेद् गुदाद्वारम्प्रकाशयेत् पुनःपुनः।
सा भवेदश्विनी मुद्रा शक्तिप्रबोधकारिणी।।85।।
अश्विनी परमा मुद्रा गुह्यरोगविनाशिनी।
बलपुष्टिकरी चैव अकालमरणं हरेत्।।86।।

अन्वयः- गुदाद्वारम् पुनः पुनः आकुञ्चयेत् प्रकाशयेत् सा शक्तिप्रबोधकारिणी अश्विनीमुद्रा भवेत्। गुह्यरोगविनाशिनी अश्विनी परमामुद्रा बलपुष्टिकरी अकालमरणम् च हरेत्।

पदार्थः- (गुदाद्वारम्) गुदा के द्वार को (पुनःपुनः) बार बार (आकुञ्चयेत् प्रकाशयेत्) सिकोड़े और फैलाये (सा) वह (शक्तिप्रबोधकारिणी) प्राणशक्ति कुण्डलिनी को जागृत करने वाली (अश्विनी परमामुद्रा) विशिष्ट अश्विनीमुद्रा (बलपुष्टिकरी) बल और पुष्टि देने वाली है (अकालमरणम् च हरेत्) और अकालमृत्यु को दूर करती है।

भावार्थः- अश्विनीमुद्रा करने के लिए गुदाद्वार को सिकोड़े और फैलाए। यह प्राणशक्ति कुण्डलिनी को जागृत करने में सहायक है। इसके अभ्यास से गुप्तरोग दूर होते हैं और शरीर बलवान् और पुष्ट होता है।

पाशिनीमुद्राः-

कण्ठे पृष्ठे क्षिपेत् पादौ पाशवे दृढबन्धने।
सा भवेत् पाशिनीमुद्रा शक्तिप्रबोधकारिणी।।87।।
पाशिनी महतीमुद्रा बलपुष्टिविधायिनी।

साधनीया प्रयत्नेन साधकैः सिद्धिकांक्षिभिः।।88।।

अन्वयः- पाशवे दृढबन्धने कण्ठे पृष्ठे पादौ क्षिपेत सा शक्तिप्रबोधकारिणी पाशिनी भवेत्। महतीपाशिनी मुद्रा बलपुष्टि विधायिनी सिद्धिकांक्षिभिः साधकैः प्रयत्नेन साधनीया।

पदार्थः- (पाशवे दृढबन्धने) दृढ़बन्धवाली पाशवी मुद्रा के लिए (कण्ठेपृष्ठे) ग्रीवा के पीछे (पादौ क्षिपेत्) पैरों के रखे (सा शक्ति प्रबोधारिणी) वह कुण्डलिनी प्राणशक्ति को जागृत करने वाली (महती पाशिनीमुद्रा) श्रेष्ठ पाशिनीमुद्रा है। (पाशिनी मुद्रा बलपुष्टि विधायिनी) पाशिनी मुद्रा बल और पुष्टि प्रदान करती है। (सिद्धिकांक्षिभिः) सिद्धि की जो इच्छा रखते हैं (प्रयत्नेन साधनीया) उन्हें इसकी प्रयत्न करके साधना करनी चाहिए।

भावार्थः- पाशवी मुद्रा के लिए दोनों पैरों को ग्रीवा के पीछे फँसाकर रखा जाता है। इसके अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है। साधक को बल और पुष्टि मिलती है, जो सिद्धि की इच्छा रखते हैं, उन्हें प्रयत्नपूर्वक इसकी साधना करनी चाहिए।

काकीमुद्राः-

काकचञ्चुवदास्येन पिबेद् वायुं शनैःशनैः।
काकीमुद्रा भवेदेषा सर्वरोगविनाशिनी।।89।।
काकीमुद्रा परा मुद्रा सर्वतन्त्रेषु गोपिता।
अस्याः प्रसादमात्रेण काकवन्नीरुजो भवेत्।।90।।

अन्वयः- काकचञ्चुवत् आस्येन शनैःशनैः वायुम् पिबेत्। एषा सर्वरोगविनाशिनी काकीमुद्रा भवेत्। काकीमुद्रा सर्वतन्त्रेषु गोपिता परा मुद्रा (अस्ति) अस्याः प्रसादमात्रेण काकवत् नीरुजः भवेत्।

पदार्थः- (काकचञ्चुवत्) कौवे की चोंच की भांति (आस्येन) मुख बनाकर उससे (शनैः शनैः) धीरे धीरे (वायुम् पिबेत्) वायु का पान करे (एषा) यह (सर्वरोगविनाशिनी) सब रोगों को नष्ट करने वाली (काकीमुद्रा भवेत्) काकीमुद्रा होती है। (काकीमुद्रा

सर्वतन्त्रेषुगोपिता) काकीमुद्रा सभी परम्पराओं में गुप्त रखी गयी है (अस्याः) इसके (प्रसादमात्रेण) प्रभाव से ही साधक (काकवत् नीरुजः भवेत्) कौए की भांति रोगरहित होता है।

भावार्थः- कौए की चोंच की आकृति का मुख को बनाकर धीरे धीरे पूरक करे, इसे काकीमुद्रा कहते हैं। इससे सभी रोग नष्ट होते हैं। सभी परम्पराओं में इसे गुप्त रखा गया है। यह एक श्रेष्ठ मुद्रा है। इसके अभ्यास के फलस्वरूप साधक कौए के समान सदा निरोग रहता है।

मातङ्गिनीमुद्राः-

कण्ठमग्ने **जले स्थित्वा नासाभ्यां** जलमाहरेत्।
मुखान्निर्गमयेत्पश्चात्पुनर्वक्त्रेण **चाहरेत्।**
नासाभ्याम् रेचयेत्पश्चात् **कुर्यादेवं पुनः पुनः।**
मातङ्गिनी **परा मुद्रा** जरामृत्युविनाशिनी।।91।।

अन्वयः- कण्ठमग्नेजले स्थित्वा नासाभ्याम् जलम् आहरेत् पश्चात् मुखात् निर्गमयेत् पुनःवक्त्रेण आहरेत् पश्चात् नासाभ्याम् रेचयेत् एवं पुनः पुनः कुर्यात्। (इयम्) मातङ्गिनी परा मुद्रा जरामृत्यु विनाशिनी (अस्ति)।

पदार्थः- (कण्ठमग्ने जले) कण्ठ तक गहरे जल में (स्थित्वा) खड़े होकर (नासाभ्याम्) दोनों नासिकाछिद्रों से (जलम् आहरेत्) जल को अन्दर ले (पश्चात्) उसके बाद (मुखात् निर्गमयेत्) मुख से निकाले (पुनः वक्त्रेण आहरेत्) फिर मुख से अन्दर ले, (पश्चात् नासाभ्याम्) फिर नाक के दोनों छिद्रों से (रेचयेत्) निकाले, (एवं पुनःपुनः कुर्यात्) ऐसा बार बार करे। (इयम्) यह (मातङ्गिनी परा मुद्रा) श्रेष्ठ मातङ्गिनीमुद्रा (जरामृत्युविनाशिनी) बुढ़ापा और मृत्यु को नष्ट करती है।

भावार्थः- मातङ्गिनीमुद्रा करने के लिए नाभि तक गहरे जल में खड़ा होकर नाक से पानी पीकर मुख से निकाले, फिर मुख से पीकर

नाक से निकाले ऐसा बार बार करे। यह श्रेष्ठ मातङ्गिनीमुद्रा बुढ़ापा और मृत्यु को विनष्ट करती है।

विरले निर्जने देशे स्थित्वा चैकाग्रमानसः।
कुर्यान्मातङ्गिनीं **मुद्रां मातङ्ग इव जायते।।92।।**
यत्र तत्र स्थितो योगी सुखमत्यन्तमश्नुते।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन **साधयेन्मुद्रिकाम्पराम्।।93।।**

अन्वयः- विरले निर्जने देशे एकाग्रमानसः स्थित्वा मातङ्गीम् मुद्राम् कुर्यात् (तेन) मातङ्ग इव जायते, योगी यत्र तत्र स्थितः अत्यन्तम् सुखम् अश्नुते। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन (इमाम्) पराम्-मुद्राम् साधयेत्।

पदार्थः- (विरले) एकान्त (निर्जने) जनशून्य (देशे) स्थान में (मातङ्गीम् मुद्राम्) मातङ्गीमुद्रा को (कुर्यात्) करे। इसके फलस्वरूप (मातङ्ग इव जायते) हाथी के समान बलयुक्त हो जाता है। (योगी) योगसाधक (यत्र तत्र स्थितः) जहाँ कहीं भी रहता हुआ (अत्यन्तं सुखम् अश्नुते) अतिशय सुख भोगता है (तस्मात्) इसलिए (सर्वप्रयत्नेन) पूरे प्रयत्न से (पराम् मुद्रिका) इस विशिष्ट मुद्रा को (साधयेत्) सिद्ध करे।

भावार्थः- साधक को चाहिए कि वह एकान्त जनशून्य स्थान में मातङ्गीमुद्रा का अभ्यास करे, इसके अभ्यास से वह हाथी के समान बलवान् हो जाता है और चाहे जहाँ रहे सर्वत्र पूर्ण सुखी रहता है। इसलिए योगी को चाहिए कि वह इस विशिष्ट मुद्रा को सिद्ध कर ले।

भुजङ्गिनीमुद्राः-

वक्त्रं किञ्चित्सुप्रसार्य **अनिलं** गलयापिबेत्।
सा भवेद् भुजगीमुद्रा जरामृत्युविनाशिनी।।94।।
यावच्च उदरे रोगमजीर्णादि **विशेषतः।**
तत्सर्वं नाशयेदाशु **यत्र मुद्रा** भुजङ्गिनी।।95।।

अन्वयः- वक्त्रम् किञ्चित् सुप्रसार्य गलया अनिलम् पिबेत्, सा भुजगीमुद्रा भवेत्। (इयम्) जरामृत्युविनाशिनी। उदरे यावच्च रोगम्

विशेषतः अजीर्णादि यत्र भुजङ्गिनीमुद्रा तत् सर्वम् आशु नाशयेत्।।

पदार्थः- (वक्त्रम्) मुख को (किञ्चित् सुप्रसार्य) थोड़ा फैलाकर (गलया) गले से (अनिलम् पिवेत्) वायु का पान करे (सा) वह (भुजगी मुद्रा स्यात्) भुजिङ्गिनी मुद्रा होती है। यह मुद्रा (जरामृत्युविनाशिनी) बुढ़ापा और मृत्यु को दूर करती है। (उदरे) पेट में (यावत् च) जो भी (रोगम् विशेषतः अजीर्णादि) रोग हैं, विशेषकर अजीर्ण आदि। (यत्र भुजङ्गिनीमुद्रा) जहाँ भुजङ्गिनीमुद्रा है (तत्सर्वम् आशु विनाशयेत्) उस सब को शीघ्र नष्ट कर देती है।

भावार्थः- मुख को थोड़ा खोल करके गले से वायु को अन्दर ले यह भुजङ्गिनीमुद्रा है, जो बुढ़ापा और मृत्यु को दुर करती है, पेट में जो भी रोग विशेषकर अजीर्ण आदि हैं, यह उन सबको शीघ्र दूर कर देती है।

सर्वमुद्राफलम्:-

इमम् तु मुद्रापटलं कथितं चण्ड कापालि।
वल्लभं सर्वसिद्धानां जरामरणनाशनम्।।96।।

अन्वयः- चण्डकापालि सर्वसिद्धानाम् वल्लभम् जरामरणनाशनम् इदम् मुद्रापटलम् कथितम्।।

पदार्थः- (चण्डकापालि) हे राजा चण्डकापालि! (सर्वसिद्धानाम् वल्लभम्) सब सिद्धजनों को प्रिय (जरामरणनाशनम्) बुढ़ापा और मृत्यु को नष्ट करने वाले (इदम् मुद्रापटलम्) मुद्राओं के इस समूह का मैंने कथन किया है।

भावार्थः- हे चण्ड कापालि! मैंने अभी मुद्राओं के उस समूह का कथन किया है जो सभी सिद्धों को अत्यन्त प्रिय है और बुढ़ापा तथा मृत्यु को नष्ट करता है।

शठाय भक्तिहीनाय न देयं यस्य कस्यचित्।
गोपनीयम् प्रयत्नेन दुर्लभं मरुतामपि।।97।।

अन्वयः- इदम् मुद्रापटलम् शठाय भक्तिहीनाय यस्य कस्य चित् न देयम्। मरुताम् अपि दुर्लभम् प्रयत्नेन गोपनीयम्।

पदार्थः- (इदम् मुद्रापटलम्) इन मुद्राओं को (शठाय) दुष्ट व्यक्ति को (भक्तिहीनाय) भक्तिरहित को (यस्य कस्यचित्) और चाहे जिसको (न देयम्) नहीं देना चाहिए (मरुताम् अपि दुर्लभम्) यह मरुद्गण के लिए भी दुर्लभ है, अतः (प्रयत्नेन) प्रयत्नपूर्वक (गोपनीयम्) गुप्त रखने योग्य है।

भावार्थः- मुद्राओं के इस समूह का उपदेश दुष्टजनों को भक्तिरहित को और चाहे जिसको नहीं करना चाहिए। मरुत्गणों के लिए भी यह दुर्लभ है इसलिए इसे छिपाकर रखना चाहिए।

ऋजवे शान्तचित्ताय गुरुभक्तिपराय **च।**
कुलीनाय प्रदातव्यम् भोगमुक्तिप्रदायकम्।।98।।

अन्वयः- ऋजवे शान्तचित्ताय गुरुभक्तिपराय **कुलीनाय च** भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् (इदम् मुद्रापटलम्) प्रदातव्यम्।

पदार्थः- (ऋजवे) विनम्र स्वभाव के व्यक्ति को (शान्तचित्ताय) जिसका चित्त शान्त है अर्थात् चञ्चल नहीं है उसे (गुरुभक्तिपराय) गुरुभक्त को (कुलीनाय) उत्तम कुल के व्यक्ति को ही (भोगमुक्तिप्रदायकम्) भोग और मुक्ति दोनों ही प्रदान करने वाले इस मुद्रा समूह का (प्रदातव्यम्) उपदेश करना चाहिए।

भावार्थः- इन मुद्राओं का जो भोग और मुक्ति दोनों देने वाली हैं, का उपदेश केवल सुशील शान्तचित्त गुरुभक्त और कुलीन को ही करना चाहिए। अन्य किसी को नहीं।

मुद्राणाम्पटलं ह्येतत् सर्वव्याधिविनाशनम्।
नित्यमभ्यासशीलस्य जठराग्निविवर्धनम्।।99।।

अन्वयः- एतत् मुद्राणाम् पटलम् हि सर्वव्याधिविनाशनम्, **नित्यम्** अभ्यासशीलस्य जठराग्निविवर्धम् (भवति)।

पदार्थः- (एतत्) यह (मुद्राणाम् पटलम्) मुद्राओं का समूह (सर्वव्याधिविनाशनम्) सब रोगों को नष्ट करता है (नित्यम् अभ्यासशीलस्य) जिसका स्वभाव नित्य अभ्यास करने का है, उनकी (जठराग्निविवर्धनम्) पेट की अग्नि को प्रदीप्त करता है।

भावार्थः- इन मुद्राओं के नित्य अभ्यास करने से सभी रोग दूर

होते हैं। पेट की अग्नि प्रदीप्त होती है।

तस्य नो जायते मृत्युः नास्य जरादिकन्तथा।।
नाग्निजलभयन्तस्य वायोरपि **कुतो भयम्।।100।।**

अन्वयः- तस्य नो मृत्युः जायते तथा अस्य जरादिकम् न, न अग्निजलभयम् तस्य वायोः अपि कुतो भयम्।

पदार्थः- (तस्य नो मृत्युजायते) उसकी न मृत्यु होती है (न जरा-आदिकम्) न इसको बुढ़ापा आदि का भय होता है (न अग्निजलभयम्) न ही अग्नि या जल का भय होता है (वायोः अपि कुतः भयम्) वायु से भी भय कैसे हो सकता है।

भावार्थः- जो मुद्राओं का अभ्यास करता है, उसकी न मृत्यु होती है, न बुढ़ापा आदि का भय होता है, न उसे अग्नि और जल का भय होता है, वायु से भी भय कैसे होगा।

कासः श्वासः प्लीहकुष्ठं श्लेष्मरोगाश्च **विंशतिः।**
मुद्राणां साधनाच्चैव विनश्यन्ति **न संशयः।।101।।**

अन्वयः- कासः श्वासः प्लीहकुष्ठम् विंशतिःश्लेश्मरोगाश्च मुद्राणाम् साधनात् विनश्यन्ति एव (अत्र) संशयः न।

पदार्थः- (कासः) खाँसी (श्वासः) दमा (प्लीहकुष्ठम्) प्लीहा के रोग और कुष्ठरोग (विंशतिःश्लेष्मरोगाश्च) और सभी बीसों कफसम्बन्धी रोग (मुद्राणाम् साधनात्) मुद्राओं की साधना से (विनश्यन्ति एव) अवश्य नष्ट होते हैं इसमें (संशयः न) कोई सन्देह नहीं है।

भावार्थः- पूर्वोक्त मुद्रा की साधना खाँसी, दमा, प्लीहा के रोग, कुष्ठ और कफ विकार से उत्पन्न (20) रोग निःसन्देह नष्ट होते हैं।

बहुना किमिहोक्तेन **सारं** वच्मि **च चण्ड ते।**
नास्ति मुद्रासमं किञ्चित् **सिद्धिदं** क्षितिमण्डले।।102।।

अन्वयः- इह बहुना उक्तेन किम्? चण्ड ते सारम् वच्मि मुद्रासमम् सिद्धिदम् क्षितिमण्डले किञ्चित् नास्ति।

पदार्थः- (इह) इस विषय में (बहुना उक्तेन किम्?) अधिक क्या कहें (चण्ड ते सारम् वच्मि) हे नृप चण्ड! तुम्हें सार बता रहा हूँ (मुद्रासमम्) मुद्रा के समान (सिद्धिदम्) सिद्धि प्रदान करने वाला (क्षितिमण्डले) भूमण्डल पर (किञ्चित् नास्ति) कुछ भी नहीं है अर्थात् सिद्धियाँ प्रदान करने में मुद्राओं से श्रेष्ठ कोई उपाय नहीं है।

भावार्थः- इस प्रसंग में अधिक क्या कहें? हे चण्डकापालि मैं तुम्हे सार बता रहा हूँ मुद्राओं के समान सिद्धि देने वाला संसार में और कोई उपाय नहीं है।

इति श्रीघेरण्डसंहितायां घेरण्डचण्डकापालिसंवादे मुद्राप्रयोगोनाम तृतीयोपदेशः।।

श्री घेरण्डसंहिता में घेरण्ड और चण्ड कापालि संवाद में मुद्रा प्रयोग नामक यह तृतीय उपदेश पूर्ण हुआ।।

अथ चतुर्थोपदेशः

प्रत्याहार प्रकरण

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रत्याहारकमुत्तमम्।
यस्य विज्ञानमात्रेण कामादिरिपुनाशनम्।।1।।

अन्वयः- अथ अतः उत्तमम् प्रत्याहारकम् सम्प्रवक्ष्यामि यस्य विज्ञानमात्रेण काम-आदि-रिपुनाशनम् (भवति)।

पदार्थः- (अथ) इसके अनन्तर (अतः) इससे आगे (उत्तमम् प्रत्याहारकम्) उत्तम प्रत्याहरर साधना का (सम्प्रवक्ष्यामि) कथन करूँगा (यस्य विज्ञानमात्रेण) जिसको जानने मात्र से (काम-आदि रिपुनाशनम्) काम आदि शत्रुओं का नाश होता है।

भावार्थः- इसके अनन्तर मैं अब उत्तम साधना प्रत्याहार का उपदेश करूँगा जिसको जानने मात्र से काम आदि शत्रुओं का नाश होता है।

यतो यतो मनश्चरति **चाञ्चल्यवशतः सदा।**
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव **वशं नयेत्।।**

अन्वयः- चाञ्चल्यवशतः मनः सदा यतः यतः चरति, एतत् ततः ततः नियम्य आत्मनि एव वशम् नयेत्।

पदार्थः- (चाञ्चल्यवशतः) चंचल स्वभाव होने से (मनः सदा) मन सर्वदा (यतः यतः चरति) जिधर जिधर भागता है (ततः ततः) वहाँ वहाँ से (नियम्य) नियन्त्रित करके (आत्मनि एव वशम् नयेत्) अपने ही वश में करे।

भावार्थः- मन स्वभाव से चंचल है इसलिए वह इधर उधर भागता है, अतः वह जिधर भी जाये उधर से हटाकर अपने वश में करे।

पुरस्कारं तिरस्कारं **सुश्राव्यं दुःश्रुतं तथा।**
मनस्तस्मानियम्यैतद् आत्मन्येव **वशं नयेत्।।3।।**

अन्वयः- पुरस्कारम् तिरस्कारं सुश्राव्यं तथा दुःश्रुतम् तस्मात् एतत् मनः नियम्य आत्मनि एव वशम् नयेत्।

पदार्थः- (पुरस्कारम्) सम्मान हो अथवा (तिरस्कारम्) अपमान

(सुश्राव्यम्) प्रशंसा हो या (दुःश्रुतम्) निन्दा (तस्मात्) उससे (एतत् मनः) इस मन को (नियम्य) नियन्त्रित करके (आत्मनि एव) अपने ही (वशम् नयेत्) वश में करे।

भावार्थः- चाहे सम्मान हो या अपमान, प्रशंसा हो या निन्दा इस मन को वहाँ से हटाकर अपने ही वश में करे।

सुगन्धो वापि दुर्गन्धो घ्राणेषु जायते मनः।
तस्मात्प्रत्याहरेत् एतदात्मन्येव **वशं नयेत्।।4।।**

अन्वयः- घ्राणेषु सुगन्धः अपि वा दुर्गन्धः मनः (तत्र) जायते एतत् तस्मात् प्रत्याहरेत् आत्मनि एव वशम् नयेत्।

पदार्थः- (घ्राणेषु) घ्राण इन्द्रिय में (सुगन्धः अपि वा दुर्गन्धः) सुगन्ध अथवा दुर्गन्ध का अनुभव हो (मनः जायते) मन वहाँ पहुँच जाता है, (तस्मात् प्रत्याहरेत्) उसे वहाँ से हटा ले (आत्मनि एव वशम् नयेत्) अपने ही वश में कर ले।

भावार्थः- घ्राण इन्द्रिय से सुगन्ध का सम्पर्क हो या दुर्गन्ध का मन वहाँ पहुँच जाता है, उसे वहाँ से हटा ले और अपने ही वश में करे।

मधुराम्लकटुतिक्तादिरसान्याति **यदा मनः।**
तदा प्रत्याहरेत्तेभ्यः आत्मन्येव **वशं नयेत्।।5।।**

अन्वयः- मधुर-अम्ल-कटु-तिक्त-आदि रसान् **यदा मनः याति,** तदा तेभ्यः प्रत्याहरेत्, आत्मनि एव वशम् नयेत्।

पदार्थः- **(मधुर-अम्ल-कटु-तिक्त-आदि रसान् यदा) जब मीठा, खट्टा, कटु, और तीता आदि रसों में (मनः याति) मन जाता है (तदा) तब (तेभ्यः)** उनसे (प्रत्याहरेत्) हटा ले और **(आत्मनि एव वशम् नयेत्)** अपने ही वश में कर ले।

भावार्थः- जब मन मीठे, खट्टे, कड़वे, तीते रसों में जाता है, तब वहाँ से उसे हटाकर अपने ही वश में कर ले।

।इति श्री घेरण्डसंहितायां घेरण्डचण्डकापालिसंवादे प्रत्याहारप्रयोगो **नाम** चतुर्थोपदेशः।।

।घेरण्डसंहिता **में** घेरण्डचण्डकापालिसंवादरूपप्रत्याहारप्रयोगनामक **चतुर्थ उपदेश पूर्ण हुआ।।**

अथ पञ्चम उपदेशः

प्राणायामप्रकरणम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि **प्राणायामस्य यद्विधिम्।**
यस्य साधनमात्रेण देवतुल्यो **भवेन्नरः।।1।।**

अन्वयः- अथ अतः प्राणायामस्य यद् विधिम् (तत्) प्रवक्ष्यामि, यस्य साधनमात्रेण नरः देवतुल्यः भवेत्।

पदार्थः- (अथ अतः) इसके अनन्तर अब (प्राणायामस्य) प्राणायाम की (यत् विधिम्) जो विधि है, उसे (सम्प्रवक्ष्यामि) भली प्रकार कहूँगा (यस्य साधनमात्रेण) केवल जिसकी साधना से (नरः) मनुष्य (देवतुल्यः भवेत्) देवों के समान हो जाता है।

भावार्थः- अब इसके बाद मैं प्राणायाम की जो विधि है, उसका उपदेश करूँगा, जिसकी साधना करने मात्र से मनुष्य देवों के समान हो जाता है।

आदौ स्थानन्तथा कालं मिताहारं ततः परम्।
नाडीशुद्धिं च तत्पश्चात्प्राणायामं च साधयेत्।।2।।

अन्वयः- आदौ स्थानम् तथा कालम् ततः परम् मिताहारम् नाडीशुद्धिम् च तत् पश्चात् च प्राणायामम् साधयेत्।

पदार्थः- प्राणायाम साधना के लिए (आदौ स्थानम् तथा कालम्) पहले स्थान और समय को (ततः परम्) उसके बाद (मिताहारम् नाडीशुद्धिम् च) मिताहार और नाड़ी शुद्धि को जाने और अपनाये (तत्पश्चात्) उसके बाद (प्राणायामम्) प्राणायाम की (साधयेत्) साधना करे।

भावार्थः- प्राणायाम साधना के लिए पहले स्थान को फिर उचित समय को जाने और चुने उसके बाद मिताहार और नाड़ीशुद्धि को अपनाये उसके बाद प्राणायाम का अभ्यास करे।

स्थाननिर्णयः-

दूरदेशे तथारण्ये राजधान्यां तथान्तिके।
योगारम्भं न कुर्वीत कृते च सिद्धिहा भवेत्।।3।।
अविश्वासो दूरदेशे अरण्ये रक्षिवर्जितम्।
लोकाकुले प्रकाशश्च तस्मात् त्रीणि विवर्जयेत्।।4।।

अन्वयः- दूरदेशे तथारण्ये राजधान्याम् तथा अन्तिके योग-आरम्भम् न कुर्वीत कृते च सिद्धिहा भवेत्। (कुतः) दूरदेशे अविश्वासः अरण्ये रक्षिवर्जिते, लोकाकुले प्रकाशश्च तस्मात् त्रीणि परिवर्जयेत्।

पदार्थः- (दूरदेशे) अपने मूल स्थान से बहुत दूर (तथा-अरण्ये) और वन में (राजधान्याम्) बड़े नगरों में (तथा अन्तिके) और उसके अधिक निकट (योग-आरम्भम्) योगाभ्यास का आरम्भ (न कुर्वीत) नहीं करना चाहिए। (कृते चेत्) यदि करते हैं तो (सिद्धिहा भवेत्) सिद्धि मिलने में हानि होती है। क्योंकि (दूरदेशे अविश्वासः) दूरदेश में लोग उस पर विश्वास नही करते, (अरण्ये रक्षिवर्जिते) वन में सुरक्षा नहीं रहती (लोकाकुले) राजधानी आदि भीड़भाड़युक्त क्षेत्र में (प्रकाशः) बहुत लोग परिचय करना प्रारम्भ करते हैं। (तस्मात्) इसलिए (त्रीणि परिवर्जयेत्) साधना के लिए इन तीन स्थानों को छोड़ देवे।

भावार्थः- प्राणायाम साधना के लिए तीन स्थान उपयुक्त नहीं है—दूरदेश, वन और बड़े नगर आदि। क्योंकि दूर देश में समाज सन्देह की दृष्टि से देखता है, वन में सुरक्षा का अभाव और राजधानी आदि भीड़भाड़ के क्षेत्र में प्रकाश अर्थात् लोग परिचय प्राप्त करके समय असमय पहुँच जाते हैं, अतः साधना में बार बार बाधा होने के कारण सिद्धि नहीं मिल पाती, इसलिए प्राणायाम साधना के लिए इन तीन प्रकार के स्थान त्याग देने चाहिए।

सुदेशे धार्मिके राज्ये सुभिक्षे निरुपद्रवे।
कृत्वा कुटीरं तत्रैकं प्राचीरैः परिवेष्टितम्।।5।।
वापी कूपं तडागं वा प्राचीरमध्यवर्त्ति च।

नात्युच्चं नातिनीचं कुटीरं कीटवर्जितम्।।6।।
सम्यग्गोमयसंलिप्तं कुटीरं तत्र निर्मितम्।
एवं स्थानेषु गुप्तेषु प्राणायामं समभ्यसेत्।।7।।

अन्वयः- धार्मिके राज्ये सुभिक्षे निरुपद्रवे सुदेशे तत्र प्राचीरैः परिवेष्टितम् एकम् कुटीरम् कृत्वा प्राचीरमध्यवर्त्ति वापी कूपम् तडागम् वा (भवेत्) कुटीरम् न अति उच्चम्, न अति नीचम्, कीटवर्जितम्, तत्र सम्यक् गोमयसंलिप्तम् कुटीरं निमितम् (कुर्यात्) एवं सुगुप्तेषु स्थानेषु प्राणायामं समभ्यसेत्।

पदार्थः- (धार्मिकराज्ये) धार्मिक राज्य में (सुभिक्षे) जहाँ भिक्षा मिलना सहज हो (निरुपद्रवे) उपद्रवरहित (सुदेशे) सुन्दर प्रदेश में (तत्र) वहाँ (प्राचीरैः परिवेष्टितम्) सब ओर प्राचीर अर्थात् चहारदिवाली से घिरी हुई ऐसी (एकं कुटीरं) एक कुटीर (कृत्वा) बनाकर (प्राचीर- मध्यवर्त्ति) प्राचीर के मध्य में (वापी कूपम् तडागम् वा) वापी कुंआ या तालाब होवे, (कुटीरम् न अति उच्चम् न अतिनीचम्) कुटीर न बहुत ऊँचे पर हो न बहुत नीचे अथवा न वह बहुत ऊँची न नीची हो, (कीटवर्जितम्) सर्प आदि कीटों से रहित (सम्यक् गोमयसंलिप्तम्) भलीप्रकार गोबर सी लीपी हुई (कुटीरम् निर्मितम्) ऐसी कुटीर बनाये। (एव सुगुप्तेषु स्थानेषु) इस प्रकार पूर्ण सुरक्षित स्थान में (प्राणायामम् समभ्यसेत्) प्राणायाम का अभ्यास करे।

भावार्थः- धार्मिक राज्य में जहाँ भिक्षा मिलना सहज हो, उपद्रव न होते हों, ऐसे सुन्दर देश में प्राचीर से घिरी हुई एक कुटी बनाए, प्राचीर के मध्य में ही वापी कुंआ या तालाब हो, कुटी बहुत ऊँचे या बहुत नीचे स्थान पर न हो, वहाँ सर्प आदि कष्टकर कीट न हों, उसे गोबर से भली प्रकार लीपा जाता हो। ऐसे पूर्ण सुरक्षित स्थान में प्राणायाम का अभ्यास करे।

कालनिर्णयः-

हेमन्ते शिशिरे ग्रीष्मे वर्षायां च ऋतौ तथा।
योगारम्भं न कुर्वीत् कृते योगो हि रोगदः।।8।।

अन्वयः- हेमन्ते शिशिरे ग्रीष्मे वर्षाय ं च ऋतौ योगारम्भम् न कुर्वीत् कृते हि योगः रोगदः।

पदार्थः- (हेमन्ते) हेमन्त ऋतु में (शिशिरे) शिशिर ऋतु में (ग्रीष्मे) गर्मी की ऋुत में (वर्षायां च ऋतौ) और वर्षा ऋतु में (योगारम्भम् न कुर्वीत्) योग को प्रारम्भ न करे (कृते च) प्रारम्भ करने पर (रोगम् आप्नुयात्) रोगी हो जाएगा।

भावार्थः- हेमन्त , शिशिर, ग्रीष्म और वर्षाऋतुओं में योग अर्थात् प्राणायाम का अभ्यास प्रारम्भ न करे, प्रारम्भ करने पर शरीर रोगी होता है।

वसन्ते शरदि प्रोप्तं योगारम्भं समाचरेत्।
तदा योगी भवेत् सिद्धो रोगान्मुक्तो भवेद् ध्रुवम्।।9।।

अन्वयः- (इदम्) प्रोक्तम् वसन्ते शरदि योगारम्भम् समाचरेत् तदा योगी ध्रुवम् सिद्धः रोगात् मुक्तः भवेत्।

पदार्थः- यह (प्रोक्तम्) कहा गया है, (वसन्ते शरदि) वसन्त और शरद्ऋतु में (योगारम्भम् समाचरेत्) योगसाधना को प्रारम्भ करे। (तदा योगी) तब योग की साधना करने वाला (ध्रुवम्) निश्चय ही (सिद्धः) सिद्ध और (रोगात् मुक्तः) रोग से मुक्त (भवेत्) होता है।

भावार्थः- ऐसा कहा गया है कि वसन्त और शरद् ऋतुओं में योगाभ्यास प्रारम्भ करे, तो योगी रोगों से मुक्त और योग में सिद्ध हो जाता है।

चैत्रादिफाल्गुनान्ते च माघादि फाल्गुनान्तिके।
द्वौ द्वौ मासौ ऋतुभोगो अनुभावश्चतुश्चतुः।।10।।

अन्वयः- चैत्रादिफाल्गुनान्ते माघ-आदि फाल्गुन-अन्तिकेः द्वौ द्वौ मासौ ऋतुभोगः, चतुःचतुः अनुभावः।

पदार्थः- (चैत्रादि फाल्गुनान्ते) चैत्र से फाल्गुनपर्यन्त (माघफाल्गुन अन्तिके) माघफाल्गुन मिलकर इसप्रकार (द्वौ द्वौ मासौ) दो दो महीने (ऋतुभोगः) एक एक ऋतु का भोग होता है और (चतुः

चतुः) चार चार महीनों (अनुभावः) उन ऋतुओं के प्रभाव का अनुभव होता है।

भावार्थः- चैत्र से लेकर फाल्गुन पर्यन्त वर्ष में जैसे माघ और फाल्गुन दो महीनों की ऋतु होती है और चार चार महीनों में उसके प्रभाव का अनुभव होता है।

वसन्तश्चैत्र वैशाखौ ज्येष्ठाषाढौ च ग्रीष्मकः।
वर्षाश्रावणभाद्राभ्यां शरदाश्विनकार्त्तिकौ।।11।।
हेमन्तो मार्गपौषे च शिशिरो माघफाल्गुने।[1]

अन्वयः- चैत्रवैशाखौ वसन्तः ज्येष्ठ-आषाढौ ग्रीष्मकः, श्रावणभाद्राभ्याम् वर्षा आश्विनकार्त्तिकौ शरद्, मार्ग-पौषे च हेमन्तः माघफाल्गुने च शिशिरः (भवति)।

पदार्थः- (चैत्रवैशाखौ वसन्तः) चैत्र और वैशाख महीने वसन्त, (ज्येष्ठ-आषाढौ ग्रीष्मकः) ज्येष्ठ और आषाढ ग्रीष्म, (श्रावणभाद्राभ्याम् वर्षा) श्रावण और भाद्रपदमास वर्षा (आश्विन कार्त्तिकौ शरद्) आश्विन और कार्त्तिकमास शरद् (मार्गपौषे हेमन्तः) मार्गशीर्ष और पौषमास हेमन्त तथा (माघफाल्गुने शिशिरः) माघ और फाल्गुन महीनों में शिशिर ऋतु मानी जाती है।

भावार्थः- चैत्र और वैशाख दो मास मिलकर वसन्तऋतु , ज्येष्ठ-आषाढ मास मिलकर ग्रीष्म ऋतु, श्रावण-भाद्रपद मिलकर वर्षाऋतु, आश्विन-कार्त्तिक मिलकर शरद्ऋतु, मार्गशीर्ष और पौषमास मिलकर हेमन्तऋतु तथा माघ और फाल्गुन मास मिलकर शिशिरऋतु होती है।

अनुभावं प्रवक्ष्यामि ऋतुना च यथोदितम्।।12।।
माघादिवैशाखान्तेषुवसन्तानुभवश्चतुः।
चैत्रादि चाषाढान्तं निदाघानुभवश्चतुः।।13।।

---

1. पद्यार्धमिदं बहुत्रनोपलभ्यते।

आषाढादिचाश्विनान्तं प्रावृषानुभवश्चतुः।
भाद्रादिमार्गशीर्षान्तं शरदोनुभवश्चतुः।।14।।
कार्त्तिकादिमाघमासन्तं हेमन्तानुभवश्चतुः।
मार्गादि चतुरोमासान् शिशिरानुभवं विदुः।।15।।

अन्वयः- यथोदितं ऋतुनाम् अनुभावं प्रवक्ष्यामि, माघादि-वैशाखान्तेषु चतुः वसन्तानुभवः, चैत्रादि आषाढान्तम् च चतुः निदाघ-अनुभवः, आषाढादि-आश्विनान्तम् च चतुः प्रावृष-अनुभवः, भाद्रादिमार्गशीर्षान्तं चतुः शरदो-अनुभवः कार्त्तिकादिमाघमासान्तम् हेमन्तानुभवः मार्गादिचतुरःमासान् शिशिर-अनुभवम् विदुः।

पदार्थः- (यथा-उदितम्) जैसा कहा जाता है (ऋतूनां अनुभावम्) ऋतुओं से होने वाले अनुभवों का कथन करूँगा, (माघादिवैशाखान्तेषु) माघ से वैशाख पर्यन्त (चतुः) चार महीनों में (वसन्तानुभवः) वसन्तऋतु जैसा अनुभव होता है (चैत्रादि-आषाढान्तम् चतुः निदाघ-अनुभवः) चैत्र से लेकर आषाढमास पर्यन्त ग्रीष्मऋतु जैसा अनुभव होता है, (आषाढादि-आश्विनान्तम् चतुः प्रावृषानुभवः) आषाढ से लेकर आश्विनमास पर्यन्त चार महीनों में वर्षाऋतु-सा अनुभव होता है, (भाद्रादिमार्गशीर्षान्तम् चतुः शरदोऽनुभवः) भाद्रपद से लेकर मार्गशीर्ष महीने तक चार मास शरद् का अनुभव होता है। (कार्त्तिकादि माघमासान्तं हेमान्तानुभवं चतुः) कार्त्तिक से माघ मास तक हेमन्तऋतु का और (मार्गादिचतुरः मासान् शिशिर अनुभवम् विदुः) मार्गशीर्ष से आरम्भ करके चार महीनों में शिशिरऋतु का अनुभव होता है।

भावार्थः- किसी भी ऋतु का प्रभाव एक महीने पूर्व से प्रारम्भ होकर एक मास बाद तक होता है। ग्रन्थकार इस तथ्य को अनुभाव नाम से बता रहे हैं। उसके अनुसार माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख चार महीनों में वसन्त के सदृश अनुभव होता है इसीप्रकार चैत्र से आषाढ पर्यन्त ग्रीष्म का-सा, आषाढ से आश्विनपर्यन्त वर्षा का-सा, भाद्रपद से मार्गशीर्षपर्यन्त शरद्ऋतु का तथा कार्त्तिक से माघ महीने तक

हेमन्तऋतु का तथा मार्गशीर्ष से फाल्गुनपर्यन्त शिशिरऋतु का अनुभव होता है।

वसन्ते वापि शरदि योगारम्भं समाचरेत्।।15।।
तथा योगो भवेत् सिद्धो विनायासेन कथ्यते।।

अन्वयः- वसन्ते शरदि अपि वा योगारम्भं समाचरेत् तथा योगः विना आयासेन सिद्धः भवेत् (इति) कथ्यते।

पदार्थः- (वसन्ते शरदि अपि वा) वसन्त में अथवा शरद्ऋतु में (योग-आरम्भम्) योगसाधना का आरम्भ (समाचरेत्) करे, (तथा) ऐसा करने से (विना आयासेन) विना विशेष प्रयत्न के (योगः सिद्धः भवेत्) योग सिद्ध हो जाता है ऐसा (कथ्यते) कहा जाता है।

भावार्थः- ऐसा कहा जाता है कि वसन्त अथवा शरद्ऋतु में योग (प्राणायाम) प्रारम्भ करने से विना विशेष प्रयत्न के उसमें सिद्धि मिल जाती है।

मिताहारः-

मिताहारं विना यस्तु योगारम्भं तु कारयेत्।।16।।
नाना रोगो भवेत्तस्य किञ्चिद् योगो न सिध्यति।

अन्वयः- यः तु मिताहारं विना योग-आरम्भम् कारयेत् तस्य नानारोगः भवेत् योगः किञ्चित् न सिध्यति।

पदार्थः- (यः तु) जो व्यक्ति (मिताहारम् विना) मिताहार के विना (योग-आरम्भम् कारयेत्) योग साधना प्रारम्भ करता है, (तस्य नानारोगः भवेत्) उसे अनेक रोग होते हैं (योगः किञ्चित् न सिध्यति) योग थोड़ा भी सिद्ध नहीं होता।

भावार्थः- जो व्यक्ति मिताहार के विना योग साधना (प्राणायाम की साधना) प्रारम्भ करता है, उसे अनेक रोग हो जाते हैं और योग में थोड़ी भी सिद्धि नहीं मिलती।

शाल्यन्नं यवपिण्डं वा गोधूमपिण्डकन्तथा।।17।।
मुद्गं माषचणकादि शुभ्रं च तुषवर्जितम्।

पटोलं पनसं मानं कंकोलं च शुकाशकम्।।18।।
द्राढिकां कर्कटीरम्भोदुम्बरीकटकंटकम्।
आमरम्भां बालरम्भां रम्भादण्डञ्च मूलकम्।।19।।
वात्ताकीं मूलकं ऋद्धिं योगी भक्षणमाचरेत्।
बालशाकं कालशाकं तथा पटोलपत्रकम्।।20।।
पञ्चशाकम्प्रशंसीयात् **वास्तुकं** हिलमोचिकाम्।
शुद्धं सुमधुरं स्निग्धं उदरार्धविवर्जितम्।।21।।
भुज्यते सुरसम्प्रीत्यै मिताहारमिमं **विदुः**।

अन्वयः- योगी शालि-अन्नम् यवपिण्डम् **तथा** गोधूमपिण्डकम्, मुद्गम्, माषचणक-आदि तुषवर्जितम् **शुभ्रम्, पटोलम् पनसम् मानम्** कंकोलम् शुकाशकम् द्राढिकां ककर्टी **रम्भा-उदुम्बरी कटकण्टकम्,** आमरम्भाम् बालरम्भाम् रम्भादण्डम् रम्भामूलकम् वार्ताकीम् **मूलकम्** ऋद्धिम् भक्षणम् आचरेत्। **बालशाकम्** कालशाकम् **तथा** पटोलपत्रकम् वास्तुकम् हिलमोचिकाम् **पञ्चशाकम्** प्रशंसीयात्। **शुद्धम् सुमधुरम्** स्निग्धम् उदरार्धविवर्जितम् सुरसम्प्रीत्यै **भुज्यते, इमम्** मिताहारम् **विदुः**।

पदार्थः- (योगी) योगसाधक **(शालि-अन्नम्) चावल** (यवपिण्डम्) **जौ के आटे से निर्मित रोटी आदि** (गोधूमपिण्डकम्) गेहूँ की रोटी आदि (मुद्गम्) मूग (तुषवर्जितम् **शुभ्रम्**) छिलकारहित साफ उरद चना आदि (पटोलम्) परवल **(पनसम्) कटहल (मानम्)** मानकन्द (कंकोल) शीतल चीनी का **फल** (शुकाशकम्) **करेला** (दाढिकाम्) जिमींकन्द (कर्कटीम्) ककड़ी **(रम्भा) केला (उदुम्बरी)** गूलर (कटकण्टकम्) करेरुआ (आमरम्भाम्) **कच्चा केला (बालरम्भाम्) केले का फूल** (रम्भादण्डम्) **केले के पेड़ के बीच का दण्ड ऊपर बाहर जिसमें फल लगते हैं** (रम्भामूलकम्) केले की जड़ (वार्ताकीम्) बैगन (मूलकम्) मूली (ऋद्धिम्) ऋद्धि या बाराही कन्द **इन शाकोंको खाये ऐसे ही** (बालशाकम्) **सरसों** आदि के कोमल पत्तों का शाक **(कालशाक) कलाय** या कालीचौराई (पटोलपत्रकम्) परवल **के पत्ते** (पञ्चशाकम्) (वास्तुकम्) बथुवा

(हिलमोचिकाम्) हुरहुर के पत्तों का शाक ये पाँच शाक इनकी (प्रशंसनीयात्) प्रशंसा करे अर्थात् इन्हें अधिक हितकर माने। (शुद्धम्) शुद्ध पवित्र (सुमधुर) मीठा (स्निग्धम्) घृत आदि से युक्त (उदरार्धवर्जितम्) आधा पेट (सुरसम्प्रीत्यै) शरीर के देवता इन्द्रियों की पुष्टिके लिए स्वाद के लिए नहीं (भुन्यते) जो खाया जाता है (इमम् मिताहारम् विदुः) इसे मिताहार कहते हैं।

भावार्थः- योगी भोजन में चावल जौ और गेहँ की मोटी रोटी आदि मूग छिलकेरहित उरद चना आदि (आदि पद से मटर, अरहर आदि की दालें) परवल कटहल, मानकन्द, कंकोल (शीतल चीनी के फल) करेला, जमीकन्द, ककड़ी, केला, गूलर के फल, करेरुआ, कच्चा केला, केला का फूल, केले की जड़, वैगन, मूली, ऋद्धि या वाराहीकन्द, कोमलपत्तों का शाक, कलाय, चौराई, पालक आदि पाँच शाक, परवल के पत्ते, बथुआ, हुरहुर का शाक इन पाँच शाकों को आदरपूर्वक प्रयोग करे। भोजन में शुद्ध मधुर स्निग्ध घृत, दूध आदि से युक्त आधा पेट केवल इन्द्रियों के बल के लिए (स्वाद के लिए नहीं) जो खाया जाता है उसे मिताहार कहते हैं।

अन्नेन पूरयेदर्धं तोयेन तु तृतीयकम्।।22।।
उदरस्य चतुर्थांशं संरक्षेद्वायुचारणे।

अन्वयः- उदरस्य अर्धम् अन्नेन पूरयेत्, तृतीयकम् तोयेन, चतुर्थांशम् वायुचारणे संरक्षेत्।

पदार्थः- (उदरस्य अर्धम्) पेट के आधे भाग को (अन्नेन पूरयेत्) अन्न से पूर्ण करे (तृतीयकम् तोयेन) तृतीय भाग को जल से पूर्ण करे (चतुर्थांशम्) चतुर्थ भाग को (वायु चारणे संरक्षेत्) वायु के आने जाने के लिए सुरक्षित रखे।

भावार्थः- भोजन करते समय अन्न से केवल आधे भाग को भरे तीसरे भाग को पानी से और चौथा भाग वायु के आवागमन के लिए सुरक्षित रखे।

कट्वम्ललवणं तिक्तं भृष्टञ्च दधि तक्रकम्।।23।।

शाकोत्कटं तथा मद्यं तालं च पनिस[1] तथा।
कुलत्थं मसूरं पाण्डुं कुष्माण्डं शाकदण्डकम्।।24।।
तुम्बीं कोलं कपित्थं च कण्टबिल्वं पलाशकम्।
कदम्बम् जम्बीरं बिम्बं लकुचं लशुनं विषम्।।25।।
कर्मरङ्गं प्रियालं च हिंगुशाल्मलिकेम्बुकम्।
योगारम्भे वर्जयेत्, पथं स्त्रीवह्निसेवनम्।।26।।

अन्वयः- कटु-अम्ल-लवणम् तिक्तम् दधि तक्रकम् शाकोत्कटम् मद्यम् तालम् पनसम् तथा कुलत्थम् मसूरम् पाण्डुम् पलाण्डुम् कुष्माण्डम् शाकदण्डकम् तुम्बीम् कोलम् कपित्थम् कण्टबिल्वम् पलाशकम् कदम्बम् जम्बीरम् बिम्बम् लकुचम् लशुनम् कर्मरङ्गम् प्रियालम् हिङ्गु शाल्मलि केम्बुकम् पथम् स्त्री-वह्निसेवनम् योग-आरम्भे वर्जयेत्।

पदार्थः- (कटु) कड़ुआ (अम्ल) खट्टा (लवणम्) नमक (तिक्तम्) तीता (दधितक्रकम्) दही और मट्ठा (शाक-उत्कट) विरेचक शाक (मद्यम्) मादक द्रव्य (तालम्) ताड़ के फल (पनसम्) लकुच-बड़हर (कुल्थम्) कुलथी (मसूरं) मसूर (पाण्डुम्-पलाण्डुम्) प्याज (कुष्माण्डम्) कोहड़ा (शाकडण्कम्) दाण्डी का शाक (तुम्बीम्) कड़वी लौकी (कोलम्) वेर (कपित्थ) कैथा (कण्टबिल्वम्) बेल पका हुआ (पलाशकम्) पलाशवृक्ष के फूल-फल (कदम्बम्) कदम्ब (जम्बीरम्) जम्बीरी नीबू (बिम्बम्) बिम्बीफल—कन्दुरु की एक जाति (लकुचम्) बड़हर (लशुनम्) लहसुन (कर्मरङ्गम्) कमरख (प्रियालम्) चिरौंजी (हिङ्गु) हींग (शाल्मलि) सेमर के पुष्प (केम्बुकम्) कोबी गोभी (पथम्) यात्रा (स्त्री) स्त्री से सम्पर्क (वह्निसेवनम्) अग्नितापना (योग-आरम्भे) योगसाधना के प्रारम्भ में (वर्जयेत्) इन्हें त्याग देवे।

भावार्थः- योगसाधक को चाहिए कि साधना के प्रारम्भ के दिनों में निम्नलिखित को सर्वथा त्याग देवे—कड़ुआ खट्टा नमक और तीते

---

1. परसम् इति पाठान्तरम्।

(तिक्त) पदार्थ दही मट्ठा विरेचक शाक मदिरा आदि नशे के द्रव्य या पेय ताड़ के फल बड़हर कुलथी मसूर प्याज कोहड़ा दाण्डी का शाक कड़वी लौकी वेर कैथा पका हुआ बेल पलाश के फूल-फल कदम्ब के फल जम्बीरी नीबू बिम्बीफल—कुन्दरु बड़हर लहशुन कमरख चिरौंजी हींग सेमर के पुष्प गोभी (कोवी) यात्रा करना स्त्री सम्पर्क और आगतापना।

नवनीतं घृतं क्षीरं गुडशक्रादि **चैक्षवम्।**
पञ्चरम्भां नारिकेलं **दाडिमं** मिसिवासकम्।।27।।
द्राक्षां तु नवनीं धात्रीं रसमम्ल विवर्जितम्।
एलां जातिं लवङ्गम् पौरुषम् जम्बुजाम्बुलम्।।28।।
हरीतकीं **च खर्जूरं** योगीभक्षणमाचरेत्।

अन्वयः- नवनीतम् घृतम् ऐक्षवम् गुड-शक्रादि (शर्करादि) पञ्चरम्भाम् नारिकेलम् दाडिमम् मिसि वासकम् द्राक्षाम् नवनीम् अम्लरसवर्जितम् धात्रीम् एलाम् जातिम् लवङ्गम् पौरूषम् जम्बु जाम्बुम् हरीतकीं खर्जूरम् योगीभक्षणमआचरेत्।

पदार्थः- (नवनीत्) मक्खन (घृतम्) घृत (क्षीरम्) दूध (ऐक्षवम् गुडशर्करादि) गन्ने के रस से बने गुड़ शर्करा मिश्री आदि (पञ्चरम्भाम्) केले के पाँचों भाग फूल-फल का कच्चे और पके दण्ड और मूल (नारिकेलम्) नारियल (दाडिमम्) अनार (मिसि) सौंफ (वासकम्) वासा-अडूसा के पुष्प-पत्र (द्राक्षाम्) अनार (नवनीम्) नेनुआ (रस-अम्ल वर्जितम् धात्रीम्) खट्टे रस से रहित आवला (एलाम्) इलायजी छोटी-बड़ी (जातिम्) जायफल (लवङ्गम्) लवंग (पौरुषम्) फालसा पका हुआ (जम्बु) जामुन (जाम्बूलम्) कठजामुन (हरीतकीम्) हरड़ (खर्जूरम्) खजूर (योगी भक्षणम्-आचरेत्) योगी इन्हें खाये।

भावार्थः- योगी को अपने आहार में मक्खन घी दूध ईख के रस से बनने वाले गुड़ शक्कर मिश्री आदि केले पके कच्चे उसके फूल दण्ड और मूल पाँचों प्रकार, नारियल अनार सौंफ वासा (अडूसा) अंगूर मुनक्का किसमिस मक्खन आंवला किन्तु खट्टा अचार आदि के

रूप में नहीं, इलायची लवंग जायफल फालसा जामुन (फरेंदा) और छोटा जामुन (कठजामुन) हरड़ और खजूर को समय (ऋतु) के अनुसार सम्मिलित करना चाहिए।

लघुपाकं प्रियं स्निग्धं तथा धातुप्रपोषणम्।।29।।
मनोऽभिलषितं योग्यं योगी भोजनमाचरेत्।

अन्वयः- लघुपाकम् प्रियम् स्निग्धम् धातुप्रपोषणम् मनःअभिलषितम् तथा योग्यम् भोजनम् योगी आचरेत्।

पदार्थः- (लघुपाकम्) शीघ्र पचने वाला (प्रियम्) जो स्वयं को प्रिय हो (स्निग्धम्) स्नेह अर्थात् घृत तेल से युक्त (धातुप्रपोषणम्) सभी धातुओं को पुष्ट करने वाला (मनःअभिलषितम्) मन को अभीष्ट (तथा योग्यम्) तथा अपने लिए उचित (भोजनम् योगी आचरेत्) इन सभी गुणों से युक्त भोजन ही योगी ग्रहण करे।

भावार्थः- योगी को चाहिए कि वह शीघ्र पचने वाले स्वयं को प्रिय घृत तेल युक्त धातुओं को पुष्ट करने वाले मनोवाञ्छित किन्तु योग्य भोजन ही करे।

कठिनं दुरितम्पूतिमुष्णम्पर्युषितन्तथा।।30।।
अतिशीतं **चाति चोग्रं भक्ष्यं योगी** विवर्जयेत्।

अन्वयः- कठिनम् दुरितम् पूतिम् उष्णम् पर्युषितम् अतिशीतम् अति उग्रम् च भक्ष्यम् योगी विवर्जयेत्।

पदार्थः- (कठिनम्) देर से पचने वाला (दुरितम्) हिंसा आदि पापकर्मों से प्राप्त (पूति) सड़ा हुआ (उष्णम्) गरम-गरम (पर्युषितम्) वासी (अतिशीतम्) बहुत ठण्डा (अति च उग्रम्) बहुत चटपटा मसालेदार (भक्ष्यम्) आहार को (योगी विवर्जयेत्) योगी त्याग देवे।

भावार्थः- योगी को चाहिए कि वह गरिष्ठ अर्थात् देर से पचने वाले हिंसा आदि से प्राप्त मांस आदि और छल प्रपञ्च चोरी डकैती से प्राप्त कोई भी द्रव्य, सड़ा हुआ, गरम, वासी, अधिक ठण्ठा तथा अधिक मसालेदार उत्तेजक आहार कभी न लेवे।

प्रातःस्नानोपवासादिकायक्लेशविधिम् तथा।31।।
एकाहारं निराहारं यामान्ते च न कारयेत्।

अन्वयः- कायक्लेशविधिम् यथा प्रातःस्नान-उपवास-आदि तथा एक आहार निराहारम् यामान्ते च (आहरम्) न कारयेत्।

पदार्थः- (कायक्लेश विधिम्) शरीर को कष्ट देने वाले कर्म (यथा) जैसे कि (प्रातःस्नान-उपवास-आदि) शीतऋतु में प्रातःस्नान-उपवास आदि (एक-आहारम्) एक समय ही भोजन (निराहारम्) कुछ भी आहार न लेना (यामान्ते च) और सायंकाल के बाद आहार लेना (न कारयेत्) न करे।

भावार्थः- योगी को चाहिए कि वह शरीर को कष्ट देने अर्थात् शरीर शोषणकरने वाले कर्म जैसे शीतऋतु में प्रातःस्नान, उपवास, एक समय ही आहार या लेना ही नहीं अथवा सायंकालसूर्यास्त के बाद भोजन करना इस सबको त्याग देवे।

तुलनीयः-

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतोनैवचार्जुन।। —भगवद्गीता 6.16

एवं विधिविधानेन **प्राणायामं समाचरेत्।।32।**
आरम्भे प्रथमं कुर्यात् क्षीराज्यं नित्यभोजनम्।
मध्याह्ने चैव सायांह्ने भोजनद्वयमाचरेत्।।33।।

अन्वयः- एवं विधिविधानेन प्राणायामम् समाचरेत्। आरम्भे प्रथमम् क्षीराज्यम् नित्यं भोजनम् कुर्यात्, मध्याह्ने सायांह्ने भोजनद्वयम् आचरेत्।

पदार्थः- (एवम्) इसप्रकार (विधिविधानेन) नियमपूर्वक रहकर (प्राणायामं समाचरेत्) प्राणायाम का अभ्यास करे। (आरम्भे प्रथमम्) अभ्यास आरम्भ करने पर पहले कुछ दिनों तक (क्षीर-आज्यम्) दूध और घृत का ही (नित्यम् भोजनम्) नित्य आहार लेवे तथा (मध्याह्ने) दोपहर में (सायाह्ने च) और सायंकाल (भोजनद्वयम्) भोजन दो बार ही (आचरेत्) करे।

भावार्थः- योगसाधक उपर्युक्त नियमों का ध्यान करते हुए ही प्राणायाम प्रारम्भ करे। प्रारम्भ में पहले कुछ दिन दूध और घृत ही नित्य भोजन में ले, वह भी केवल दो बार मध्याह्न में और सायंकाल।

कुशासने मृगाजिने व्याघ्राजिने **च कम्बले।**
स्थूलासने समासीनः प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः।।34।।
नाडीशुद्धिं **समासाद्य प्राणायामं समभ्यसेत्।**

अन्वयः- नाडीशुद्धिम् समासाद्य कुश-आसने मृग-अजिने व्याघ्र-अजिने स्थूल-आसने प्राङ्मुखः अपि वा उदङ्मुखः समासीनः प्राणायामम् समभ्यसेत्।

पदार्थः- (नाडीशुद्धिम् समासाद्य) पहले नाड़ीशोधन करके (कुश-आसने) कुश से बने आसन पर (अपिवा) अथवा (मृग-अजिने) मृगचर्म पर अथवा (व्याघ्र अजिने) बाघ के चर्म पर अथवा (कम्बले) कम्बल पर (स्थूलासने) स्थूल आसन पर (प्राङ्मुखः अपिवा उदङ्मुखः) पूर्व की ओर अथवा उत्तर की ओर मुख करके (प्राणायामम् समभ्यसेत्) प्राणायाम का अभ्यास करे।

भावार्थः- प्राणायाम प्रारम्भ करने से पूर्व साधक को नाड़ी शुद्धि कर लेनी चाहिए। प्राणायाम के अभ्यास के लिए स्थूल आसन पर कुश से बना आसन या मृगचर्म व्याघ्रचर्म या कम्बल बिछाकर उस पर पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके बैठे और प्राणायाम का अभ्यास प्रारम्भ करे।

चण्डकापालि उवाचः-

नाडीशुद्धिं **कथं** कुर्यान्नाडीशुद्धिस्तु **कीदृशी।।35।।**
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि **तद्वदस्व दयानिधे।**

अन्वयः- नाडीशुद्धिम् कथम् कुर्यात्, कीदृशी तु नाडीशुद्धिः, तत्सर्वम् श्रोतुम् इच्छामि दयानिधे! तद् वदस्व।

पदार्थः- चण्डकापालि पूछते है कि (नाडीशुद्धिम् कथम् कुर्यात्) नाड़ीशुद्धि **कैसे** की जाती है? (**कीदृशी तु** नाडीशुद्धिः) नाड़ीशुद्धि क्या

है (तत् सर्वम्) वह सब (श्रोतुम् इच्छामि) सुनना चाहता हूँ (तत् वदस्व) वह हमें बतावो।

भावार्थः- चण्डकापालि पूछते हैं कि नाड़ीशुद्धि कैसे की जाती है और नाड़ीशुद्धि है क्या? यह सब मैं सुनना चाहता हूँ आप हमें बताइये।

घेरण्ड उवाचः-

मलाकुलासु **नाडीषु मारुतो नैव गच्छति।।36।।**

प्राणायामः कथं सिद्धयेत्तत्वज्ञानम् **कथं भवेत्।**

तस्मादादौ नाडीशुद्धिम्प्राणायामन्ततोऽभ्यसेत्।।37।।

अन्वयः- मलआकुलासु नाडीसु मारुतः नैव गच्छति (अतः) प्राणायामः कथम् सिद्धयेत् तत्त्वज्ञानम् च कथम् भवेत्, तस्मात् नाडीशुद्धिम् आदौ ततः प्राणायामम् समभ्यसेत्।

पदार्थः- (मल-आकुलासु नाडीसु) मल से भरी हुई नाड़ियों में (मारुतः) वायु (नैव गच्छति) नहीं जाती है इसलिए (प्राणायामः कथं सिद्धयेत्) प्राणायाम कैसे सिद्ध होगा (तत्त्वज्ञानम् कथम् भवेत्) और तत्त्वज्ञान कैसे होगा (तस्मात्) इसलिए (आदौ नाडीशुद्धिम्) पहले नाड़ीशुद्धि (ततः प्राणायामम् अभ्यसेत्) उसके बाद प्राणायाम का अभ्यास करे।

भावार्थः- (घेरण्ड बोले) मल से भरी हुई नाड़ियों में प्राणवायु प्रवेश ही नहीं करता, फिर प्राणायाम में सिद्धि कैसे मिल सकती है, तत्त्वज्ञान कैसे हो सकता है, इसलिए पहले नाड़ीशुद्धि करे फिर प्राणायाम का अभ्यास प्रारम्भ करे।

नाडीशुद्धिर्द्विधा **प्रोक्ता** समनुर्निर्मनुस्तथा।

बीजेन समनुं कुर्यात् निर्मनुं धौतिकर्मणा।।38।।

अन्वयः- नाडीशुद्धिः द्विधा प्रोक्ता समनुः तथा निर्मनुः। समनुम् बीजेन कुर्यात् निर्मनुम् धौतिकर्मणा कुर्यात्।

पदार्थः- (**नाडीशुद्धिः द्विधा प्रोक्ता**) नाड़ीशुद्धि दो प्रकार से बतीयी गयी है (**समनु तथा निर्मनुः**) मन्त्र के साथ और बिना मन्त्र

के, (समनुम् बीजेन कुर्यात्) मन्त्र के साथ नाड़ीशुद्धि को बीजमन्त्र के साथ करे (निर्मनुम्) मन्त्ररहित को (धौतिकर्मणा) धौति क्रिया के द्वारा करे।

भावार्थः- नाड़ीशुद्धि दो प्रकार की बतायी गयी है मन्त्रसहित और मन्त्ररहित। मन्त्रसहित नाड़ी शुद्धि बीजमन्त्र के साथ की जाती है और मन्त्ररहित धौतिकर्म के द्वारा की जाती है।

धौतिकर्म पुरा प्रोक्तं षट्कर्मसाधने यथा।
शृणुष्व समनुं चण्ड! नाडीशुद्धिं यथा भवेत्।।39।।

अन्वयः- धौतिकर्म यथा (क्रियते) पुरा षट्कर्मसाधने **प्रोक्तम्।** चण्ड! समनुम् नाडीशुद्धिम् शृणु यथा भवेत्।

पदार्थः- (धौतिकर्म यथा) धौतिकर्म जिस प्रकार किया जाता है (पुरा) पहले (षट्कर्मसाधने) षट्कर्मसाधना के क्रम में (**प्रोक्तम्**) बताया है (चण्ड!) हे चण्ड! (समनुम् नाडीशुद्धिम्) **मन्त्रसहित** नाड़ीशुद्धि को (शृणु) सुनो (यथा भवेत्) जिस प्रकार की जाती है।

भावार्थः- हे चण्ड! षट्कर्म साधना के प्रसङ्ग में धौतिकर्म को बताया जा चुका है। मन्त्रसहित नाड़ीशुद्धि कैसे की जाती है इसे सुनो।

उपविश्यासने **योगी पद्मासनं समासाद्य।**
गुर्वादि न्यासनं कुर्याद् यथैव गुरुभाषितम्।।40।।
नाडीशुद्धिम्प्रकुर्वीत प्राणायामविशुद्धये।

अन्वयः- योगी उपविश्य पद्मासनम् समासाद्य **यथा** गुरुभाषितम् तथा एव गुरु आदि न्यासनं कुर्यात् (ततः) प्राणायामविशुद्धये नाडीशुद्धिम् प्रकुर्वीत।

पदार्थः- (योगी) योगसाधक (उपविश्य) बैठकर (**पद्मासनं समासाद्य**) पद्मासन लगाकर (यथागुरुभाषितम्) **गुरु ने जिस प्रकार बताया है उसके अनुसार** (एव) ही (गुरुआदिन्यासनम् **कुर्यात्**) गुरु आदि का न्यास करे उसके बाद (प्राणायामविशुद्धये) **प्राणायाम** भलीप्रकार हो सके इसके लिए (नाडीशुद्धिम् **प्रकुर्वीत**) नाड़ीशुद्धि करे।

भावार्थः- योगी बैठकर पद्मासन लगाये फिर जैसा गुरु ने बताया है उसी प्रकार गुरु आदि न्यास करे उसके अनन्तर भलीप्रकार

प्राणायाम साधना के लिए नाड़ीशोधन करे।

वायुबीजन्ततो **ध्यात्वा धूम्रवर्णं** सतेजसम्।।41।।
चन्द्रेण पूरयेद् वायुं बीजैः षोडशकैः **सुधीः।**
चतुषष्ठ्या **मात्रया च** कुम्भकेनैव **धारयेत्।।42।।**
द्वात्रिंशन्मात्रया **वायुं** सूर्यनाड्या **च रेचयेत्।**

अन्वयः- ततः सुधीः धूम्रवर्णं सतेजसम् वायुबीजम् (यँ) ध्यात्वा षोडशकैः बीजैः (सह) चन्द्रेण वायुम् पूरयेत् चतुःषष्ठ्या मात्रया कुम्भकेन एव धारयेत् द्वात्रिंशत् मात्रया सूर्यनाड्या च रेचयेत्।

पदार्थः- (ततः सुधीः) उसके बाद बुद्धिमान् साधक (धूम्रवर्णम् सतेजसम्) धुएँ के रंग वाले तेजयुक्त (वायुबीजम्) वायु के बीज मन्त्र 'यँ' का ध्यान करके (षोडशकैः बीजैः) सोलह बार बीज मन्त्र का जप करते हुए (चन्द्रेण वायुं पूरयेत्) चन्द्रनाड़ी अर्थात् बायें नासिका द्वार से वायु को अन्दर भरे अर्थात् पूरक करे। (चतुःषष्ठ्या मात्रया) और चौंसठमात्रा पर्यन्त (कुम्भकेन धारयेत्) कुम्भक करते हुए वायु को अन्दर रोके (द्वात्रिंशत् मात्रया) बत्तीसमात्रकाल में उसे (सूर्यनाड्या रेचयेत्) सूर्यनाड़ी अर्थात् दाहिने नासिका मार्ग से रेचक करे।

भावार्थः- इसके अनन्तर सुधी साधक धूम्रवर्ण तेजयुक्त वायु के बीजमन्त्र 'यँ' का ध्यान करके बीजमन्त्र का जप करते हुए सोलह समय मात्रा में चन्द्रस्वर से (बायीं नाक से) पूरक करके चौंसठ मात्रा काल तक बीजमन्त्र का जप करते हुए कुम्भक करे और उसके बाद बत्तीस मात्रा काल में बीजमन्त्र का ध्यान करते हुए सूर्यनाड़ी (दाहिने नासिका मार्ग) से रेचक करे।

नाभिमूलाद् वह्निमुत्थाप्य ध्यायेत्तेजोऽवनीयुतम्।।43।।
वह्निबीजं षोडशेन सूर्यनाड्या **च पूरयेत्।**
चतुःषष्ठ्या च मात्रया कुम्भकेनैव **धारयेत्।।44।।**
द्वात्रिंशन्मात्रया **वायुं** शशिनाड्या **च रेचयेत्।**

अन्वयः- नाभिमूलात् वह्निम् उत्थाप्य तेजोऽवनीयुतं वह्निबीजम् (रँ) ध्यायेत्, सूर्यनाड्या च षोडशेन पूरयेत्, चतुषष्ठ्या मात्रया

कुम्भकेन एव धारयेत्, द्वात्रिंशत् मात्रया च शशिनाड्या वायुम् रेचयेत्।

पदार्थः- (नाभिमूलात् वह्निम् उत्थाप्य) नाभिमूल से अग्नितत्त्व को उठाकर (तेजोऽवनीयुतम्) अग्नितत्त्व के स्थान मणिपूरचक्र साथ (वह्निबीजम्) अग्नि के बीजमन्त्र रँ का (ध्यायेत्) ध्यान करे, साथ ही (सूर्यनाड्या) सूर्यनाड़ी से (षोडशेन) सोलह मात्रा काल में (पूरयेत्) पूरक करे, उसके बाद (चतुःषष्ट्या मात्रया) चौंसठ मात्रा में (कुम्भकेन) कुम्भक करते हुए (धारयेत्) अन्दर रोके, (द्वात्रिंशत् मात्रया च) और बतीस मात्रा काल में (शशिनाड्या) चन्द्रनाड़ी से (वायुम् रेचयेत्) वायु को बाहर निकाले।

भावार्थः- पूर्व क्रिया करके नाभिमूल अर्थात् अग्नितत्त्व के स्थान मणिपूर चक्र से अग्नितत्त्व को उठाकर अग्नितत्त्व के स्थान मणिपूर चक्र और अग्नि के बीज मन्त्र 'रँ' का ध्यान करते हुए सूर्यनाड़ी से सोलह मात्रा में पूरक करके चौंसठ मात्राकाल तक कुम्भक करे तथा बत्तीस मात्रा काल में चन्द्रनाड़ी से रेचक करे।

नासाग्रे शशधृग्बिम्बं ध्यात्वा ज्योत्स्ना समन्वितम्।
हँ बीजं षोडशेनैव इडया पूरयेन्मरुत्।
चतुःषष्ट्या मात्रया च वं बीजं चैव धारयेत्।।46।।
अमृतं प्लावितं ध्यात्वा नाडीधौतिं विभावयेत्।
लकारेण द्वात्रिंशेन **दृढं भाव्यं** विरेचयेत्।।47।।

अन्वयः- नासाग्रे ज्योत्स्नासमन्वितम् शशधृक् बिम्बम् 'हँ' बीजं ध्यात्वा षोडशेन एव इडया पूरयेत्, चतुःषष्ट्या मात्रया वायुम् वँ बीजम् च धारयेत्, अमृतम् प्लावितम् नाडी मण्डलम् ध्यात्वा दृढम् भाव्यम् नाडीशुद्धिम् विभावयेत्, लकारेण द्वात्रिंशेन विरेचयेत्।

पदार्थः- (नासाग्रे) नासिका के अग्रभाग पर (ज्योत्स्ना समन्वितं) चांदनी सहित (शशधृक्बिम्बम्) शशांक अर्थात् चन्द्रबिम्ब और (हँ बीजम्) मनस् के बीजमन्त्र 'हँ' को (ध्यात्वा) ध्यान करते हुए (इडया षोडशेन एव) इडानाड़ी द्वारा सोलह मात्राओं से (पूरयेत्) पूरक करे, (चतुष्ट्या मात्रया वँ बीजम् च) चौसठमात्रा से आकाशतत्त्व के

बीजमन्त्र वँ के साथ (धारयेत्) कुम्भक करे (अमृतं प्लावितं ध्यात्वा) नाड़ीमण्डल अमृत से आप्लावित हुआ इस भावना के साथ (दृढम् भाव्यम् नाडीशुद्धिम्) दृढ़ भावना के साथ नाड़ीशुद्धि की (विभावयेत्) भावना करे। उसके बाद (लकारेण द्वात्रिंशेन) पृथिवीतत्त्व के बीजमन्त्र लँ का ध्यान करते हुए बत्तीस मात्राकाल में (विरेचयेत्) पिङ्गलानाड़ी से रेचक करे अर्थात् वायु को बाहर निकाले।

भावार्थः- नासिका के अग्रभाग पर 'हँ' बीज के साथ चांदनी सहित चन्द्रमा का ध्यान करते हुए सोलह मात्राओं में बायीं नासिका से पूरक करे। आकाश बीज वँ का ध्यान करते हुए चौंसठ मात्रा तक कुम्भक करे उसके अनन्तर नाड़ीमण्डल में अमृत भर रहा है और नाड़ियाँ शुद्ध हो रही हैं यह दृढ़ भावना करे एवं पृथिवीतत्त्व के बीजमन्त्र लँ और उसके स्थान मूलाधार चक्र का ध्यान करते हुए बत्तीस मात्रा में रेचक करे।

एवं नाडीशुद्धिविधिं **कृत्वा नाडीं विशोधयेत्।**
दृढीभूयासनं **कृत्वा प्राणायामं समाचरेत्।।47।।**

अन्वयः- एवं नाडीशुद्धिविधिं कृत्वा नाडीम् विशोधयेत्, दृढीभूय आसनम् कृत्वा प्राणायामं समाचरेत्।

पदार्थः- (एवम्) इस प्रकार (नाडीशुद्धिविधिं कृत्वा) नाड़ीशुद्धि की क्रियाविधि सम्पन्न करके (नाडीम् विशोधयेत्) नाड़ी को शुद्ध करे, तत्पश्चात् (दृढीभूय-आसनम् कृत्वा) दृढ़तापूर्वक आसन करके (प्राणायामम् समाचरेत्) प्राणायाम करे।

भावार्थः- पूर्व बतायी हुई विधि से नाड़ीशोधन करके दृढ़तापूर्वक आसन करके प्राणायाम का अभ्यास करे।

सहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी **शीतली तथा।**
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्छाकेवली **चाष्टकुम्भकाः।।48।।**

अन्वयः- **सहितः** सूर्यभेदः उज्जायी शीतली भस्त्रिका भ्रामरी मूर्छा केवली च अष्ट कुम्भकाः भवन्ति।

पदार्थः- (सहितः) रेचकपूरक सहित कुम्भक (सूर्यभेदः) सूर्यभेदी कुम्भक (उज्जायी) उज्जायी प्राणायाम प्रश्वास (शीतली)

शीतली प्राणायाम (भस्त्रिका) भस्त्रा की भांति तीव्र श्वास प्रश्वास युक्त प्राणायाम (भ्रामरी) भ्रमर की भांति गुञ्जारयुक्त प्राणायाम (मूर्छा) अचेतनता लाने वाला (केवली च) और रेचक पूरकरहित केवल कुम्भक (अष्टकुम्भकाः) ये आठ प्रकार के कुम्भक प्राणायाम होते हैं।

भावार्थः- कुम्भक आठ प्रकार के हैं—सहित, सूर्यभेद, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्छा, और केवल कुम्भक।

सहितः द्विविधः प्रोक्तः, प्राणायामं समाचरेत्।
सगर्भो बीजमुच्चार्य **निगर्मो** बीजवर्जितः।।49।।

अन्वयः- सहितः द्विविधः प्रोक्तः सगर्भः बीजम् उच्चार्य, निगर्भः बीजवर्जितः (एवं) प्राणायामम् समाचारेत्।

पदार्थाः- (सहितः द्विविधः प्रोक्तः) सहित प्राणायाम दो प्रकार का कहा गया है। (सगर्भः बीजम् उच्चार्य) बीजमन्त्र के साथ किया जाने सगर्भ और (निगर्भः बीजवर्जितः) निगर्भ बीज रहित होता है (प्राणायामं समाचरेत्) दोनों में कोई या दोनों प्राणायाम करे।

भावार्थः- सहित प्राणायाम दो प्रकार का होता है सगर्भ और निगर्भ। सगर्भ बीजमन्त्र का जप करते हुए किया जाता है। निगर्भ बीजमन्त्र के बिना किया जाता है।

सगर्भप्राणायामः-

प्राणायामं सगर्भं च प्रथमं कथयामि।
सुखासने चोपविश्य प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः।।50।।
ध्यायेद् विधिं रजोगुण्यं रक्तवर्णमवर्णकम्।

अन्वयः- प्रथमम् सगर्भम् प्राणायामम् कथयामि, सुखासने प्राङ्मुखः अपि वा उदङ्मुखः उपविश्य रजोगुण्यम् रक्तवर्णम् अवर्णम् विधिम् ध्यायेत्।

पदार्थः- (प्रथमम्) सबसे पहले (सगर्भम् प्राणायामम्) सगर्भ प्राणायाम को (कथयामि) बता रहा हूँ। (सुखासने) सुखासन में (प्राङ्मुखः) पूर्व की और मुख करके (अपि वा) अथवा (उदङ्मुखः) उत्तर की ओर मुख करके (उपविश्य) बैठकर

(रजोगुण्यम्) रजोगुण प्रधान (रक्तवर्णम्-अवर्णकम्) लाल रंग का ब्रह्मा का बीजमन्त्र 'अ' के साथ ब्रह्मा का ध्यान करे।

भावार्थः- महर्षिघेरण्ड राजा कापालि से कहते हैं कि मैं पहले सगर्भ प्राणायाम को बता रहा हूँ—सुखपूर्वक पद्मासन आदि किसी आसन में अथवा सुखासन में पूर्व या उत्तर दिशा की और बैठकर रजोगुण प्रधान रक्तवर्ण 'अ' बीज युक्त ब्रह्मा का ध्यान करे।

इडया पूरयेद् वायुं मात्रया षोडशैः सुधीः।।51।।
पूरकान्ते कुम्भकादौ कर्त्तव्यस्तूड्डियानकः।
हरिं सत्त्वमयं ध्यात्वा उकारं कृष्णवर्णकम्।।52।।
चतुःषष्ट्या च मात्रया कुम्भकेनैव धारयेत्।
तमोमयं शिवं ध्यात्वा मकारं शुक्लवर्णकम्।।53।।
द्वात्रिंशन्मात्रया **चैव रेचयेद् विधिना पुनः।**

अन्वयः- सुधीः षोडशैः मात्रया इडया वायुम् पूरयेत् पूरक-अन्ते कुम्भक-आदौ उड्डीयानकः कर्त्तव्यः सत्त्वमयम् हरिम् कृष्णवर्णकम् उकारम् ध्यात्वा चतुःषष्ट्या मात्रया कुम्भकेन एव धारयेत्, पुनः तमोमयम् शिवम् शुक्लवर्णकम् मकारं ध्यात्वा द्वात्रिंशत् मात्रया च विधिना रेचयेत्।

पदार्थः- (सुधीः) बुद्धिमान् साधक (षोडशैः मात्रया इडया) सोलह मात्राओं से चन्द्र नाड़ी से पूरक करे तथा (पूरकान्ते कुम्भकादौ) पूरक के अन्त तथा कुम्भक के प्रारम्भ में (उड्डियानकः कर्त्तव्यः) उड्डीयानबन्ध करना चाहिए, उसके बाद (सत्त्वमयम् हरिम्) सत्त्व गुणप्रधान विष्णु को और (कृष्णवर्णकम् उकारम्) काले रंगयुक्त (उकारं ध्यात्वा) उकार का ध्यान करके (चतुःषष्ट्या मात्रया) चौंसठ मात्रा से (कुम्भकेन धारयेत्) कुम्भक करते हुए वायु को अन्दर रोके, तदनन्तर (तमोमयम् शिवम्) तमोगुण प्रधान शिव को और (शुक्लवर्ण के मकार) शुक्लवर्ण 'म'कार का (ध्यात्वा) ध्यान करके पुनः (द्वात्रिंशत्मात्रया) फिर बत्तीस मात्राओं में (विधिना रेचयेत्) रेचक करे।

भावार्थः- सोलह मात्राओं में बायीं नासिका से पूरक करे तथा पूरक के बाद कुम्भक से पहले उड्डीनबन्ध लगाये, उसके बाद सत्त्वगुणमय विष्णु और कृष्णवर्ण उकार का ध्यान करके चौंसठ मात्रा में कुम्भक करते हुए वायु को अन्दर रोके तदनन्तर तमोगुणमयशिव और शुक्लवर्ण मकार का ध्यान करके बत्तीस मात्रा में विधिपूर्वक रेचक करे।

पुनः पिङ्गलया पूर्य कुम्भकेनैव धारयेत्।।55।।
इडया रेचयेत्पश्चात् बीजेन क्रमेण तु।

अन्वयः- पुनः क्रमेण बीजेन एव पिङ्गलया पूर्य कुम्भकेन धारयेत्, पश्चात् इडया रेचयेत्।

पदार्थः- (पुनः) इसके बाद (क्रमेण बीजेन एव) पूर्वोक्तक्रमसे बीज मन्त्र के साथ (पिङ्गलया पूर्य) सूर्यनाड़ी से पूरक करके (कुम्भकेन धारयेत्) कुम्भक करते हुए अन्दर रोके, (पश्चात् इडया रेचयेत्) उसके बाद चन्द्रनाड़ी से रेचक करे।

भावार्थः- उपर्युक्त विधि से पूरक कुम्भक रेचक करने के बाद पुनः उसी क्रम से बीजमन्त्र के सूर्यनाड़ी से पूरक करे, फिर कुम्भक करके चन्द्रनाड़ी से रेचक करे।

अनुलोमविलोमेन बारं बारञ्च साधयेत्।।56।।
पूरकान्तं कुम्भकान्तं धृतं नासापुटद्वयम्।
कनिष्ठाऽनामिकाङ्गुष्ठैः तर्जनीमध्यमां विना।।57।।

अन्वयः- तर्जनीमध्यमां विना कनिष्ठा-अनामिका-अङ्गुष्ठैः धृतं नासापुटद्वयम् अनुलोमविलोमेन बारम् बारम् पूरकान्तम् कुम्भकान्तम् साधयेत्।

पदार्थः- (तर्जनीमध्यमा विना) तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों का प्रयोग न करते हुए (कनिष्ठा-अनामिका-अङ्गुष्ठै) कनिष्ठा अनामिका और अंगूठे के द्वारा (धृतं नासापुटद्वयम्) नासिका के दोनों मार्गों के बारी बारी से दबाकर (अनुलोम-विलोमेन) अनुलोम और विलोम के

द्वारा (बारंबारम्) बार बार (पूरकान्तं कुम्भकान्तम्) पूरक और कुम्भक करके (साधयेत्) सबीजप्राणायाम सिद्ध करे।

भावार्थः- इस प्राणायाम में इडा और पिङ्गला विशेष से पूरक रेचक करने के लिए तर्जनी मध्यमा को दूर रखकर अनामिका और कनिष्ठा और दूसरे अंगूठे से दोनों नासिकामार्गों को दबाते हुए पूरक कुम्भक और रेचक अनुलोम विलोम विधि से सिद्ध करे।

प्राणायामं निगर्भम् विना बीजेन जायते।
एकादिशतपर्यन्तं पूरकुम्भकरेचनम्।।58।।

अन्वयः- निगर्भम् प्राणायामं पूरकुम्भकरेचनम् एकादि शतर्यन्तम् बीजेन विना जायते।

पदार्थः- (निगर्भम् प्राणायामम्) निगर्भसहित प्राणायाम (पूरकुम्भकरेचनम्) पूरक कुम्भक और रेचक (एकादिशतपर्यन्तम्) एक से सौ बार पर्यन्त (बीजेन विना) बीजमन्त्र के बिना (जायते) किया जाता है।

भावार्थः- निगर्भ प्राणायाम में पूरक कुम्भक और रेचक बीजमन्त्र के बिना किया जात है।

उत्तमा विंशतिर्मात्रा **मात्रा षोडश मध्यमा।**
अधमा द्वादशीमात्रा प्राणायास्त्रिधा **स्मृताः**।।59।।
अधमाज्जायते **घर्म** मेरुकम्पश्च **मध्यमात्।**
उत्तमाच्च भूमित्यागस्त्रिविधं **सिद्धिलक्षणम्**।।60।।

अन्वयः- विंशतिमात्रा **उत्तमा** षोडशमात्रा **मध्यमा**, द्वादशीमात्रा **अधमा**-प्राणायामाः त्रिधा स्मृताः। अधमात् घर्मम् जायते, मध्यमात् मेरुकम्पः, उत्तमात् च भूमित्यागः (एवम्) सिद्धिलक्षणम् त्रिविधम्।

पदार्थः- (विंशतिः मात्रा उत्तमा) बीस मात्रा उत्तम, (षोडशमात्रा मध्यमा) सोलह मात्रा में मध्यम और (द्वादशमात्राः अधमाः) बारहमात्राओं का अधम प्राणायाम, इस प्रकार (प्राणायामाः त्रिधा स्मृताः) प्राणायाम तीन प्रकार के माने गये हैं। (अधमात् घर्म जायते)

अधम प्राणायाम से पसीना होता है (मध्यमात् मेरुकम्पः) मध्य प्राणायाम में मेरुदण्ड में कम्पन होता है (उत्तमात् च) और उत्तम प्राणायाम से (भूमित्यागः) भूमित्याग हो जाता है।

भावार्थः- प्राणायाम में पूरक कुम्भक और रेचक में समय का अनुपात 1:4:2 का है अर्थात् पूरक से कुम्भक में चार गुना समय और रेचक में दो गुना लगना चाहिए। इसप्रकार उत्तम में पूरक बीस मात्रा कुम्भक अस्सी मात्रा और रेचक चालिस मात्रा, इसीप्रकार मध्यम में पूरक में सोलह कुम्भक में चौंसठ, रेचक में बत्तीस और अधम प्राणायाम में पूरक में बारह, कुम्भक में अड़तालिस और रेचक में चौबीस मात्रा काल होगा, इसप्रकार उत्तम मध्यम अधम भेद से प्राणायाम के तीन प्रकार होंगे। अधम प्राणायाम में शरीर में पसीना आता हे, मध्यम में मेरुदण्ड में कम्पन होता है और उत्तम में योगी भूमि से ऊपर उठ जाता है।

प्राणायामात्खे चरत्वं प्राणायामात् रोगनाशः।
प्राणायामाद् वेधयेच्छक्तिम् प्राणायामान्मनोन्मनी।।61।।
आनन्दो जायते चित्ते प्राणायामी सुखी भवेत्।

अन्वयः- प्राणायामात् खेचरत्वम्, प्राणायामात् रोगनाशः, प्राणायामात् शक्तिम् वेधयेत्, प्राणायामात् मनोन्मनी भवेत्, प्राणायामात् चित्ते आनन्दः जायते, प्राणायामात् योगी सुखी भवेत्।

पदार्थः- (प्राणायामात्) प्राणायाम की साधना से (खेचरत्वम् भवेत्) आकाश में विचरण की योग्यता प्राप्त होती है, (प्राणायामात् रोगनाशः) प्राणायाम से रोग नष्ट होते हैं, (प्राणायामात् शक्तिम् वेधयेत्) प्राणायाम से प्राणशक्ति कुण्डलिनी जागृत होती है, (प्राणायामात् मनोन्मनी) प्राणायाम से समाधि सिद्ध होती है, (चित्ते आनन्दः जायते) प्राणायाम से चित्त में आनन्द प्रकट होता है और (प्राणायामात् सुखी भवेत्) प्राणायाम करने वाला सुखी होता है।

भावार्थः- प्राणायाम साधना के अनेक लाभ हैं जैसे साधक आकाश में गमन कर सकता है, उसके सभी वर्त्तमान और भावी रोग

नष्ट हो जाते हैं, प्राणशक्ति कुण्डलिनी का जागरण होता है, समाधि में सिद्धि मिलती है, चित्त में अपूर्व आनन्द का अनुभव होता है तथा योगी पूर्ण रूप सुखी होता है।

कथितं सहितं कुम्भं सूर्यभेदनकं शृणु।।62।।
पूरयेत् सूर्यनाड्या च यथाशक्ति बहिर्मरुत्।
धारयेद् बहुयत्नेन कुम्भकेन जलन्धरैः।।63।।
यावत्स्वेदो नखकेशाभ्याम् तावत्कुर्वन्तु कुम्भकम्।

अन्वयः- सहितम् कुम्भकम् कथितम् सूर्यभेदनकम् शृणु। बहिःमरुत् सूर्यनाड्या यथाशक्ति पूरयेत् जलन्धरैः (सह) बहुप्रयत्नेन कुम्भकेन धारयेत्, यावत् नखकेशाभ्याम् स्वेदः (भवेत्) तावत् कुम्भकम् कुर्वन्तु।

पदार्थः- (सहितम् कुम्भकम् कथितम्) मैंने सहित कुम्भक बता दिया है। (सूर्यभेदनकम् शृणु) अब सूर्यभेद प्राणायाम को सुनो- (बहिःमरुत्) बाहर की वायु को (सूर्यनाड्या) दाहिने नासिका छिद्र से (यथाशक्ति पूरयेत्) शक्ति के अनुसार पूरक करे। (जलन्धरैः) जालन्धर आदि तीनों बन्धों के साथ (बहुयत्नेन) बहुत प्रयत्न के साथ (कुम्भकेन धारयेत्) कुम्भक करते हुए अन्दर रोके। (यावत् नखकेशाभ्याम् स्वेदः) जब तक नख से शिर के बालों तक पसीना न आये (तावत् कुम्भकम् कुर्वन्तु) तब तक कुम्भक करना चाहिए।

भावार्थः- सहित कुम्भक की चर्चा हो चुकी है। अब सूर्यभेदन प्राणायाम की विधि सुनो। इसमें बाहरी वायु को सूर्यनाड़ी द्वारा अधिक से अधिक अन्दर ले, उसके बाद तीनों बन्ध लगाकर तब तक कुम्भक करे, जब तक कि पैर से शिर तक पसीना न आा जाए।

प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ तथैव च।।64।।
नागः कूर्मश्च कृकलो देवदत्तो धनञ्जयः।

अन्वयः- प्राणः अपान समानः तथैव उदानव्यानौ, नागः कूर्मः कृकलः देवदत्तः धनञ्जय च (दशप्राणाः सन्ति)।

पदार्थः-भावार्थः- प्राण अपान समान उदान और व्यान तथा नाग कूर्म कृकल देवदत्त और धनञ्जय ये (दश प्राणाः सन्ति) ये दश प्राण पाँच प्राण और पाँच उप प्राण, हैं।

हृदि प्राणो वहेन्नित्यमपानो गुदमण्डले।।64।।
समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमध्यगः।
व्यानो व्याप्य शरीरे तु प्रधानाः पञ्च वायवः।।65।।
प्राणाद्याः पञ्च विख्याताः नागाद्याः पञ्च वायवः।

अन्वयः- प्राणः हृदि नित्यम् वहेत्, अपानः गुदमण्डले, समानः तु नाभिदेशे, उदानः कण्ठमध्यगः, व्यानः तु शरीरे व्याप्य (वहेत्, इमे) पञ्च प्रधानाः वायवः, पञ्च प्राणाद्याः विख्याताः। नागाद्याः पञ्च वायवः (सन्ति)।

पदार्थः- (प्राणः हृदि नित्यम् वहेत्) प्राणवायु हृदय में नित्य प्रवाहित रहता है (अपानः गुदमण्डले) अपानवायु गुदा-योनि के क्षेत्र में, (समानः नाभिदेशे) समान वायु नाभिदेश में, (उदानः कण्ठमध्यगः) उदान वायु कण्ठ के मध्य में रहता है और (व्यानः तु शरीरे व्याप्य) व्यान वायु पूरे शरीर में व्यापक होकर कार्य करता है (पञ्च वायवः प्रधानाः) ये पाँच प्रधान हैं और (प्राणाद्या, पञ्च विख्याताः) प्राण आदि पाँच प्रसिद्ध वायु है (नागाद्याः पंच वायवः) नाग आदि भी पाँच वायु हैं।

भावार्थः- प्राण निरन्तर हृदय में प्रवाहित रहता है, अपान गुदा और योनि आदि में, समान का स्थान नाभिमण्डल है, उदान का स्थान कण्ठ है तथा व्यान सम्पूर्ण शरीर में व्यापक रहता है। ये पांच प्रधान वायु प्राण आदि के नामों से विख्यात हैं। इनके अतिरिक्त शरीर में नाग आदि पांच वायु भी है।

तेषामपि च पञ्चानां स्थानानि तु वदाम्यहम्।।66।।
उद्गारे नाग आख्यातः कूर्मस्तून्मीलने स्मृतः।
कृकलः क्षुत्कृते ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे ।।67।।

न जहाति मृते क्वापि सर्वव्यापी धनञ्जयः।
नागो गृह्णाति चैतन्यं कूर्मश्चैव निमेषणम्।।68।।
क्षुधाकृत् कृकलश्चैव चतुर्थे तु विजृम्भणम्।
भवेद् धनञ्जयाच्छब्दं क्षणमात्रं न निःसरेत्।।69।।

अन्वयः- तेषां पञ्चानाम् अपि स्थानानि अहम् वदामि—उद्गारे नागः आख्यातः, उन्मीलने कूर्म स्मृतः, क्षुत्कृते कृकलः ज्ञेयः, विजृम्भणे देवदत्तः, सर्वव्यापि धनञ्जयः मृते अपि न जहाति, नागः चैतन्यम् गृह्णाति, कूर्मश्च निमेषणम्, कृकलः क्षुधाकृत्, चतुर्थे तु विजृम्भणम्, धनञ्जयात् शब्दं भवेत्, क्षणमात्रम् न निःसरेत्।

पदार्थः- (तेषाम् पञ्चानाम् अपि) उन पांचों के भी (स्थानानि) (अहम् वदामि) मैं बतलाता हूँ- (नागः उद्गारे आख्यातः) नाग उपप्राण उद्गार अर्थात् डकार लेने के क्रम में प्रसिद्ध है (कूर्मः उन्मीलने) कूर्म पलकों को खोलने के लिए विदित है (क्षुत्कृते) भूख के लिए (कृकलः ज्ञेयः) कृकल को उत्तरदायी समझो, (विजृम्भणे देवदत्तः) जम्भाई लेने में देवदत्त (सर्वव्यापी धनञ्जयः) पूरे शरीर में व्यापक धनञ्जय (मृते अपि न जहाति) मृत्यु के बाद भी शरीर को नहीं छोड़ता। (नागः चैतन्यम् गृह्णापि) नाग चेतना लाता है, (कूर्मः च) और निमेष उन्मेष करता है (कृकलः क्षुधाकृत्) कृकल भूख को उत्पन्न करता है (चतुर्थे) चौथे अर्थात् देवदत्त में (विजृम्भणम्) जम्भाई होती है (धनञ्जयात् शब्दम् भवेत्) धनञ्जय शब्द को उत्पन्न करता है, (क्षणमात्रम् न निःसरेत्) यह क्षण मात्र के लिए भी शरीर को खाली नहीं छोड़ता।

भावार्थः- महर्षि घेरण्ड कहते हैं कि मैं अब पांचों उपप्राणों का स्थान बताने जा रहा हूँ सुनो—नाग उपप्राण उद्गार अर्थात् डकार लेने के प्रसङ्ग में जाना जाता है, कूर्म से पलकों का उठना गिरना होता है, कृकल भूख उत्पन्न करता है, देवदत्त के द्वारा जम्भाई आती है, शरीर में सर्वत्र रहने वाला धनञ्जय मृत्यु के बाद भी शरीर को नहीं छोड़ता। नाग उपप्राण चेतना का हेतु है, कूर्म के द्वारा निमेष उन्मेष होता है

कृकल भूख उत्पन्न करता है चतुर्थ अर्थात् देवदत्त जम्भाई उत्पन्न करता है और धनञ्जय से शब्द प्रकट होता है तथा यह क्षणभर के लिए शरीर से अलग नहीं होता।

नोट- ग्रन्थकार ने इन उपप्राणों के स्थान की प्रतिज्ञा करके उनका कथन नहीं किया है यह प्रतिज्ञा-हानि-दोष है; कार्यों के कथन से साधक को इन स्थान का अनुमान अवश्य होता है तथा कार्यो का कथन शब्दान्तर या समान शब्दों दो बार किया है, इसमें भी पुनरुक्ति दोष मान जायेगा। प्राणों और उपप्राणों का वर्णन भी सूर्यभेद प्राणायाम विधि बताने की बीच में अप्रासङ्गिक है।

सर्वे ते सूर्यसंभिन्ना नाभिमूलात्समुद्धरेत्।
इडया रेचयेत् पश्चात् धैर्येणाखण्डवेगतः।।70।।
पुनःसूर्येण चाकृष्य कुम्भयित्वा यथाविधि।
रेचयित्वा साधयेत्तु क्रमेण च पुनः पुनः।।71।।

अन्वयः- ते सर्वे सूर्यसंभिन्नाः (भवन्ति), नाभिमूलात् समुद्धरेत् पश्चात् धैर्येण अखण्डवेगतः इडया रेचयेत्। पुनः च सूर्येण आकृष्य यथाविधि कुम्भयित्वा रेचयित्वा क्रमेण पुनः पुनः साधयेत्।

पदार्थः- (ते सर्वे) वे सभी प्राण-उपप्राण (सूर्यसम्भिन्ना) सूर्यभेद से अधिक गतिशील हो जाते है। इसके लिए (नाभिमूलात् समुद्धरेत्) नाभिमूल के ऊपर से उठाए (पश्चात् धैर्येण अल्पवेगात्) उसके बाद धैर्यपूर्वक धीरे धीरे (इडया रेचयेत्) चन्द्रनाड़ी से रेचक करे (पुनः च) और फिर (सूर्येण) दाहिने नासिका छिद्र से (आकृष्य) वायु को अन्दर लेकर (यथाविधि कुम्भयेत्) विधिपूर्वक कुम्भक करे (रेचयित्वा क्रमेण) रेचक करके क्रमशः (पुनः पुनः साधयेत्) बार बार इसकी साधना करे।

भावार्थः- सूर्यभेद से सभी प्राण जागृत हो जाते हैं इसलिए उड्डीयान बन्ध सहित कुम्भक करके बायीं नासिका से रेचक करे। इसप्रकार क्रमशः विधिपूर्वक साधना करे।

कुम्भकः सूर्यभेदस्तु जरामृत्युविनाशकः।
बोधयेत् कुण्डलीशक्तिं देहानलविवर्धनः।।72।।

इति ते कथितं चण्ड! सूर्यभेदनमुत्तमम्।

अन्वयः- सूर्यभेदः कुम्भकः तु जरामृत्युविनाशकः देह-अनल-विवर्धनः कुण्डलीशक्तिम् बोधयेत्। हे चण्ड! इति ते उत्तमम् सूर्यभेदनम् कथितम्।

पदार्थः- (सूर्यभेदः कुम्भकः तु) सूर्यभेद कुम्भक तो (जरामृत्यु-विनाशकः) बुढ़ापा और मृत्यु को दूर करता है, (देह-अनल विवर्धनः) शरीर की अग्नि को बढ़ाता है और (कुण्डली शक्तिं) कुण्डली प्राणशक्ति को (बोधयेत्) जागृत करता है (चण्ड) हे चण्ड! (इति ते उत्तमम् सूर्यभेदनम्) यह उत्तम सूर्यभेदन प्राणायाम (ते कथितम्) तुम्हें मैंने बता दिया है।

भावार्थः- सूर्यभेद कुम्भक प्राणायाम बुढ़ापा और मृत्यु को नष्ट करता है, शरीर की अग्नि को प्रदीप्त करता है, कुण्डली को जागृत करता है, हे चण्ड इसका उपदेश मैंने तुम्हें दे दिया है।

(नोट- विधि पूर्ण स्पष्ट नहीं है।)

उज्जायी कुम्भकः-

नासाभ्यां वायुमाकृष्य **वायुं वक्त्रेण धारयेत्।।73।।**
हृद्गलाभ्यां समाकृष्य मुखमध्ये **च धारयेत्।**
मुखम्प्रक्षाल्य **संवेद्य** कुर्याज्जालन्धरन्ततः।।74।।
आशक्तिं **कुम्भकं कृत्वा** धारयेदविरोधतः।

अन्वयः- **नासाभ्यां** वायुमाकृष्य **वक्त्रेण** वायुम् धारयेत्, हृदगलाभ्यां **च समाकृष्य मुखमध्ये** धारयेत्, मुखम्प्रक्षाल्य **संवेद्य** ततः जालंधरम् **कुर्यात्**, आशक्तिम् अविरोधतः **कुम्भकम् कृत्वा** धारयेत्।

पदार्थः- (नासाभ्याम् वायुमाकृष्य) **दोनों** नासिकाओं **से वायु को अन्दर लेकर** (वक्त्रेण धारयेत्) मुख से **धारण करे** (हृद्गलाभ्याम् समाकृष्य) **हृदय और गले से पूरक करके** (मुखमध्ये धारयेत्) **मुख में** धारण करे (मुखम् प्रक्षाल्य) मुख को खाली करके अर्थात् रेचक करके (संवेद्य) **वायु को** पुनः लेकर (ततः जालन्धरम् कुर्यात्) उसके **बाद जालन्धर बन्ध करे** (आशक्तिम् अविरोधतः) **शक्तिभर किन्तु**

हठात् नहीं (कुम्भकम् कृत्वा धारयेत्) कुम्भक करके वायु को अन्दर रोकें।

भावार्थः- नाक के दोनों छिद्रों से पूरक करके मुख में वायु को रोके, फिर रेचक करके हृदय और गले द्वारा पूरक करके मुख में रोके, फिर मुख से वायु को पूरी तरह निकाल करके और पुनः लेकर जालन्धर बन्ध के साथ यथाशक्ति, किन्तु हठपूर्वक नहीं, कुम्भक करते हुए वायु को अन्दर रोके।

उज्जायी कुम्भकं कृत्वा सर्वकार्याणि **कारयेत्।।75।।**
न भवेत्कफरोगञ्च क्रूरवायुरजीर्णकम्।
आमवातं क्षयं कासं ज्वरं प्लीहा न विद्यते।।76।।
जरामृत्युविनाशाय चोज्जायीं साधयेन्नरः।

अन्वयः- उज्जायीकुम्भकम् **कृत्वा** सर्वकार्याणि **कारयेत्**, कफरोगम् **क्रूरवायुः** अजीर्णकम् आमवातम् **क्षयम् कासम् न भवेत्** ज्वरप्लीहा **न** विद्यते। **नरः** जरामृत्युविनाशाय **च** उज्जायीम् **साधयेत्**।

पदार्थः- **(उज्जायी कुम्भकं कृत्वा)** उज्जायी कुम्भक करके साधक (सर्वकार्याणि) सब कार्यों को सिद्ध करे। (कफरोगम् **क्रूरवायु** अजीर्णकम्) कफरोग उदावर्त्त अजीर्ण अर्थात् अपच (आमवातम् **क्षयम् कासम् न भवेत्**) आमवात क्षय और खांसी नहीं होती। **(नरः जरामृत्यु विनाशाय)** मनुष्य बुढ़ापा और मृत्यु को दूर करने के लिए (उज्जायीम् साधयेत्) उज्जायी प्राणायाम को सिद्ध करे।

भावार्थः- साधक उज्जायी कुम्भक करके सब कार्य सिद्ध करे, जो उज्जायी प्राणायाम करता है, उसे कफ सम्बन्धी रोग क्रूरवायु (उदावर्त्त) अजीर्ण आमवात क्षय खांसी ज्वर प्लीहा वृद्धि आदि रोग नहीं होते और वह बुढ़ापा और मृत्यु पर विजय पा लेता है।

शीतली प्राणायामः-

जिह्वया वायुमाकृष्य **उदरे पूरयेत् शनैः।।77।।**
क्षणं च कुम्भकं कृत्वा नासाभ्यां **रेचयेत् पुनः।**

सर्वदा साधयेद् योगी शीतली कुम्भकं शुभम्।।78।।
अजीर्ण कफपित्तञ्च नैव तस्य प्रजायते।

अन्वयः- शनैः जिह्वया वायुम् आकृष्य उदरे पूरयेत् क्षणम् च कुम्भकम् कृत्वा नासाभ्यां पुनः रेचयेत्। योगी शुभम् शीतलीकुम्भकम् सर्वदा साधयेत्, तस्य अजीर्णम् कफपित्तम् च न प्रजायते।

पदार्थः- (शनैः) धीरे धीरे (जिह्वया वायुम् आकृष्य) जिह्वा द्वारा वायु को अन्दर लेकर (उदरे पूरयेत्) पेट में भरे, (क्षणं च कुम्भकम् कृत्वा) कुछ देर कुम्भक करके (नासाभ्याम्) दोनों नाक से (पुनःरेचयेत्) फिर रेचक करे। (योगी) योगसाधक (शुभम् शीतली कुम्भकम्) कल्याणकारी शीतली कुम्भक (सर्वदा साधयेत्) सदा अभ्यास करे, (तस्य) उसे (अजीर्णम् कफपित्तम् च) अपच कफ पित्त सम्बन्धी रोग (न प्रजायते) नहीं होते हैं।

भावार्थः- शीतली प्राणायाम के लिए जिह्वा से धीरे धीरे वायु को अन्दर लेवे फिर कुछ देर कुम्भक करके वायु को दोनों नाक से निकाले। योगी को चाहिए कि वह कल्याणकारी शीतली प्राणायाम का नियमित अभ्यास करे। ऐसा करने से उसे अजीर्ण और कफ-पित्त सम्बन्धी रोग कभी नहीं होते।

भस्त्रिका कुम्भकः-

भस्त्रेव लोहकाराणां यथा क्रमेण संभ्रमेत्।।79।।
तथा वायुञ्च नासाभ्यामुभाभ्याञ्चालयेच्छनैः।
एवं विंशतिवारञ्च कृत्वा कुर्याच्च कुम्भकम्।।80।।
तदन्ते चालयेद्वायुं पूर्वोक्तञ्च यथाविधि।
त्रिबारं साधयेदेनं भस्त्रिकाकुम्भकं सुधीः।।81।।
न च रोगं न च क्लेशमारोग्यञ्च दिने दिने।

अन्वयः- यथा लोहकाराणाम् भस्त्रा क्रमेण सम्भ्रमेत् तथा उभाभ्याम् नासाभ्याम् शनैः वायुम् संचालयेत् एवं विंशतिवारम् च कृत्वा कुम्भकम् कुर्यात्। तदन्ते च यथाविधि पूर्वोक्तम् वायुम् चालयेत्

(एवम्) सुधीः एनं भस्त्रिकाकुम्भकम् साधयेत्। न च रोगम् न च क्लेशम् दिने दिने च आरोग्यम् भवति।

पदार्थः- (यथा) जिस प्रकार (लोहकाराणाम् भस्त्रा) लोहारों की भाथी (क्रमेण संभ्रमेत्) क्रम पूर्वक चलती है (तथा) उसी प्रकार (उभाभ्याम् नासाभ्याम्) दोनों नाक से (शनैः) धीरे धीरे (वायुम् संचालयेत्) वायु को लेवे और निकाले (एवं विंशतिवारम् कृत्वा) इसप्रकार बीस बार करके (कुम्भकम् कुर्यात्) कुम्भक करे, (तदन्ते च) और उसके बाद (यथाविधि) विधिपूर्वक (पूर्वोक्तम् वायुम् चालयेत्) पूर्वोक्त वायु को निकाले। इसप्रकार (सुधीः) बुद्धिमान् साधक (एनं भस्त्रिकाकुम्भकम् त्रिवारं साधयेत्) इस भस्त्रिका कुम्भक की तीन बार साधना करे। (न च रोगम् न च क्लेशम्) इससे साधक को रोग और कष्ट नहीं होते, (दिने दिने आरोग्यम् च) और प्रतिदिन आरोग्य बढ़ता है।

भावार्थः- जैसे लोहार की भाथी क्रमशः सांस लेती और निकालती है, उसीप्रकार से वायु का संचालन बीस बार करके कुम्भक करे और फिर उसी प्रकार वायु का संचालन करे। इस प्रकार भस्त्रिका कुम्भक की तीन बार साधना करनी चाहिए। जो भस्त्रिका कुम्भक की साधना करता है, उसे रोग और क्लेश नहीं होते और प्रतिदिन आरोग्य बढ़ता है, वर्त्तमान रहता है।

भ्रामरी कुम्भकः-

अर्धरात्रिगते योगी जन्तूनां शब्दवर्जिते।।82।।
कर्णौ पिधाय हस्ताभ्यां कुर्यात् पूरककुम्भकम्।
शृणुयाद् दक्षिणे कर्णे नादमन्तर्गतं शुभम्।।83।।
प्रथमं झिंझिनादं च वंशीनादं ततः परम्।
मेघझर्झर-भ्रमरी-घण्टाकांस्यं ततः परम्।।84।।
तुरीभेरीमृदङ्गादि निनादानकदुन्दुभिः।
एवं नानाविधो नादो जायते नित्यमभ्यसात्।।85।।
अनाहतस्य शब्दस्य तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः।

ध्वनेरन्तर्गतञ्ज्योतिर्ज्योतेरन्तर्गतं मनः।।86।।
तन्मनो विलयं याति तद् विष्णोः परममादम्।
एवं च भ्रामरी सिद्धिः समाधौ सिद्धिमाप्नुयात्।।87।।

अन्वयः- योगी जन्तूनाम् शब्दवर्जिते अर्धरात्रिगते हस्ताभ्याम् कर्णौ पिधाय पूरककुम्भकम् कुर्यात् दक्षिणे कर्णे अन्तर्गतम् शुभम् नादम् शृणुयात्, प्रथमम् झिंझिनादम्, ततः परम् वंशीनादम् मेघ-झर्झर-भ्रमरी-घण्टाकास्यम्, ततः परम् तुरीभेरीमृदङ्गादि नाद-आनक दुन्दुभिः एवं नित्यमभ्यासात् नानाविधः निनादः जायते अनाहतस्य शब्दस्य ध्वनिः, तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः, ध्वनेअन्तर्गतम् ज्योतिः, ज्योतेः अन्तर्गतं मनः तत् मनः विलयम् याति, तत् विष्णोः परम् पदम्, एवम् भ्रामरीसिद्धिः (योगी) समाधौ सिद्धिम् आप्नुयात्।

पदार्थः- (योगी) योगसाधक (जन्तूनां शब्दवर्जिते) जन्तुओं के शब्दों से रहित (अर्धरात्रिगते) आधी रात्रि के बाद (हस्ताभ्याम् कर्णौ पिधाय) हाथों से कान बन्द करके (दक्षिणे कर्णे) दाहिने कान में (शुभम् नादम् शृणुयात्) शुभनाद को सुने (प्रथम् झिंझीनादम्) पहले झींगर की ध्वनि (ततः परम्) उसके बाद (वंशीनादम्-मेघ-झर्झर-भ्रमरी- घण्टा-कांस्यम्) वंशी की ध्वनि, बादल के बरसने की ध्वनि-भ्रमरी की गुंजार कांसे के घण्टे का नाद (ततः परम्) उसके बाद (भेरी मृदङ्ग आदि निनाद) भेरी मृदंग आदि की ध्वनि फिर (आनकदुन्दभिः) तासा और नगाड़े की ध्वनि (एवम् नित्यमभ्यसनात्) प्रतिदिन अभ्यास करने पर (नानाविधः नादः जायते) अनेक प्रकार के नाद का अनुभव होता है। (अनाहतस्य शब्दस्य ध्वनिः) अनाहत नाद की जो ध्वनि है (तस्य शब्दस्य ध्वनेः अन्तर्गतम्) उस शब्द की ध्वनि के अन्तर्गत (ज्योतिः) ज्योति है (ज्योतेः अन्तर्गतम्) उस ज्योति के अन्तर्गत (मनः) मन है (तत् मनः विलयं याति) वह मन विलीन हो जाता है (तद् विष्णोः परमम् पदम्) यह स्थिति विष्णु का परमपद है। (एवं च) इसप्रकार (भ्रामरी सिद्धिः) भ्रामरी की सिद्धि होती है और इससे योगी (समाधौ सिद्धिम् आप्नुयात्) समाधि की सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

भावार्थः- योगी आधी रात बीतने पर जब जीव-जन्तुओं की ध्वनि न हो तब दोनों हाथों से कान बन्द कर ले और पूरक कुम्भक करे, उस समय उसे दाहिने कान में पहले झींगुर की ध्वनि फिर वंशी की ध्वनि उसके बाद क्रमशः बादल के बरसने की, फिर भौंरे का गुंजन कांसे के घण्टा की ध्वनि, उसके बाद तुरी भेरी मृदङ्ग आदि का निनाद और उसके बाद आनक और दुन्दुभि का नाद सुनाई पड़ता है। इसप्रकार नित्य अभ्यास करने पर अनेक प्रकार के नाद योगी को सुनाई पड़ते। इस अनाहर नाद की ध्वनि में ज्योति का और ज्योति में मन का वास है, इस प्रकार इस साधना से मन का लय हो जाता है, यह स्थिति विष्णु का परम पद है एवं यही भ्रामरी सिद्धि है, इससे योगी को समाधि की सिद्धि हो जाती है।

जपादष्टगुणं ध्यानं ध्यानादष्टगुणं तपः।
तपसोऽष्टगुणो नादः नादात्परतरं नहि[1]।।88।।

अन्वयः- जपात् अष्टगुणं ध्यानम् ध्यानात् अष्टगुणम् तपः, तपसः अष्टगुणः नादः, नादात्परतरम् नहि (अस्ति)।

पदार्थः- (जपात् अष्टगुणम् ध्यानम्) जप की अपेक्षा ध्यान आठ गुना प्रभाव करता है, (ध्यानात् अष्टगुणम् तपः) ध्यान की अपेक्षा तप आठ गुना प्रभावकारी है। (तपसः अष्टगुणः नादः) नाद तप से भी आठ गुना अधिक फलदायी है (नादात्परतरं नहि) नाद से श्रेष्ठ अन्य कुछ नहीं है।

भावार्थः- समाज में जप ध्यान तप और नाद साधनाएँ प्रचलित हैं इनमें प्रत्येक पूर्व की अपेक्षा आठ गुना शीघ्र फलदायी है और नाद साधना से श्रेष्ठ कोई अन्य साधना नहीं है।

मूर्छाकुम्भकः-

सुखेन कुम्भकं कृत्वा मनश्चैव भ्रुवोऽन्तरम्।
सन्त्यज्य विषयान् सर्वान्मनोमूर्छासुखप्रदा।।89।।
आत्मनि मनसो योगात् आनन्दो जायते ध्रुवम्।

---

1. पद्यमिदं क्वचित् पुस्तकेषु न दृश्यते।

अन्वयः- सर्वान् विषयान् सन्त्यज्य सुखेन कुम्भकम् कृत्वा मनः च भ्रुवोः एव अन्तरम् कृत्वा सुखप्रदा मनो मूर्छा (भवति)। मनसः आत्मनि संयोगात् ध्रुव आनन्दः जायते।

पदार्थः- (सर्वान् विषयान् संत्यज्य) सभी विषयों का त्याग करके (सुखेन कुम्भकम्) सुखपूर्वक कुम्भक करके (सुखप्रदा मनोमूर्छा) सुखदायी मनोमूर्छा होती है। (मनश्च) और मन का (आत्मनि संयोगात्) आत्मा से संयोग होने से (ध्रुवम्) निश्चय ही (आनन्दः जायते) आनन्द होता है।

भावार्थः- मूर्च्छा प्राणायाम के लिए इन्द्रियों के सभी विषयों का त्याग करके सुखपूर्वक कुम्भक करके मन को भ्रूमध्य में स्थापित करते हैं, इससे सुख का अनुभव होता है, यह मनोमूर्छा है। वस्तुतः मन को आत्मा के साथ संयुक्त करने पर निश्चय ही अद्भुत आनन्द का अनुभव होता है।

केवली कुम्भकः-

हंकारेण बहिर्याति **सकारेण विशेत् पुनः।।90।।**

षट्शतानि दिवारात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः।

अजपानाम गायत्रीं जीवो जपति सर्वदा।।91।।

अन्वयः- (प्राणवायुः) हंकारेण बहिःयाति सकारेण पुनः विशेत् **(एवं)** जीवः दिवारात्रौ षट्शतानि एकविंशतिसहस्राणि अजपानामगायत्रीं सर्वदा जपति।

पदार्थः- प्राणवायु (हंकारेण) 'हं' ध्वनि के साथ (बहिःयाति) बाहर जाता है, (पुनः सकारेण विशेत्) फिर 'स' ध्वनि के साथ अन्दर आता है, इसप्रकार (जीवः दिवारात्रौ) जीव दिन और रात्रि में (षट्शतानि एकविंशतिसहस्राणि) इक्कीस हजार छः सौ बार (अजपा नाम गायत्रीम्) अजपा नामक गायत्री को (सर्वदा जपति) सर्वदा जपता है।

भावार्थः- मनुष्य की जब श्वास बाहर जाती है, तब अव्यक्त 'हं' ध्वनि होती है और जब प्राण वायु अन्दर प्रवेश करती है, तब

अव्यक्त 'स' ध्वनि होती है। इसप्रकार श्वासप्रश्वास की क्रिया के साथ जीव एक अहोरात्रि (दिन रात में) इक्कीस हजार छ सौ बार अजपा नामक गायत्री का जप करता है।

मूलाधारे यथा हंसः तथा हि हृदि पंकजे।
तथा नासे पुटे द्वन्द्वे त्रिविधं संगमागम्।।92।।

अन्वयः- यथा मूलाधारे हंस तथा हि हृदि पंकजे तथा द्वन्द्वे नासापुटे (एवं) सम् गम् आगमम् त्रिविधम् (भवति)।

पदार्थः- (यथा मूलाधारे हंसः) जिस प्रकार मूलाधार में हंस अर्थात् आना-जाना होता है (तथा हि हृदि पंकजे) उसी प्रकार हृदयकमल में होता है, (तथा द्वन्द्वे नासापुटे) उसी प्रकार दोनों नासिका छिद्रों में होता है। इसप्रकार (त्रिविधम् संगमागमम्) हंस अर्थात् श्वासप्रश्वास का आनाजाना तीन प्रकार से होता है।

भावार्थः- दोनों नासिका छिद्रों में मूलाधार में और हृदयकमल में तीन प्रकार से अर्थात् तीन स्थानों हंस मन्त्र का जप निरन्तर चलता रहता है।

षण्णवत्यङ्गुलीमानं शरीरं कर्मरूपकम्।
देहाद् बहिर्गतोवायुस्वभावो द्वादशाङ्गुलिः।।93।।
गायने षोडशाङ्गुल्यो भोजने विंशतिस्तथा।
चतुर्विंशागुलिः प्रस्थे निद्रायां त्रिंशदङ्गुलिः।।94।।
मैथुने षट् त्रिंशदुक्तं व्यायामे च ततोऽधिकम्।

अन्वयः- कर्मरूपकम् शरीरम् षण्णवति-अंगुलिमानम्, देहात् बहिःगतः वायुस्वभावः द्वादशअंगुलिः, गायने षोडशअंगुल्यः तथा भोजने विंशतिः, प्रस्थे चतुर्विंशांगुलिः, निद्रायां त्रिंशद्अंगुलिः, मैथुने षट्त्रिंशद् उक्तम्। व्यायामे ततः अधिकम् (मानम् भवति)।

पदार्थः- (कर्मरूपकम्) कर्म का आधार यह (शरीरम्) देह की (षण्णवति अंगुलिमानम्) लम्बाई छियानबे अंगुलि है (देहात्बहिर्गतः वायुस्वाभवः) देह निकले हुए वायु का स्वभाव बारह अंगुलि है, (गायने षोडशाङ्गुल्यः) गाने के समय वह सोलह अंगुल बाहर जाता

है, (तथा भोजने विंशतिः) भोजन के समय बीस अंगुलि, (प्रस्थे) चलने में (चतुर्विंशाङ्गुलिः) चौबीस अंगुलि, (निद्रायां त्रिंशद् अंगुलिः) निद्रा के समय तीस अंगुल (मैथुने षट् त्रिंशत् अंगुलिः) सम्भोग के समय छत्तीस अंगुलि (व्यायामे च) और व्यायाम में (ततः अधिकम्) उससे भी अधिक वायु का मान होता है।

भावार्थः- प्रत्येक व्यक्ति की लम्बाई छियानबे (96) अंगुल है। बाहर निकलने वाला वायु स्वभाव से बाहर बारह अंगुल जाता है, गाने में सोलह अंगुल, भोजन में बीस अंगुल, चलने में चौबीस अंगुल, निद्रा में तीस अंगुल, सम्भोग में छत्तीस अंगुल और व्यायाम में उससे अधिक वायु का मान होता है।

स्वभावस्य गते न्यूनम् परमायुः प्रवर्धते।।95।।
आयुःक्षयोऽधिके प्रोक्तो मारुते चान्तराद्गते।

अन्वयः- स्वभावस्य न्यूनम् गते आयुः परम् प्रवर्धते। अन्तरात् मारुते अधिके क्षयः प्रोक्तः।

पदार्थः- (स्वभावस्य न्यूनम् गते) सामान्य से गति की संख्या कम होने पर (आयुः परम् प्रवर्धते) आयु अधिक बढ़ती है, (अन्तरात् मारुते अधिके गते) और अन्दर संवायु के अधिक संख्या में निकलने पर (आयुःक्षयः प्रोक्तः) आयु का नाश बताया गया है।

भावार्थः- यदि अपनी स्वाभाविकमात्रा से वायु कम गति करती है तो आयु की अतिशय वृद्धि होती है और अधिक मात्रा में गति से आयु का क्षय होता है।

तस्मात् प्राणे स्थिते देहे मरणं नैवजायते।।95।।
वायुना घटसम्बन्धे भवेत् केवलकुम्भकम्।

अन्वयः- तस्मात् देहे प्राणे स्थिते मरणं नैव जायते, वायुना घटसम्बन्धे केवलकुम्भकम् भवेत्।

पदार्थः- (तस्मात्) इस कारण (देहे प्राणे स्थिते) देह में प्राण के विद्यमान रहने पर (मरणम् न एव जायते) मृत्यु नहीं होती। (वायुना घटसम्बन्धे) वायु के शरीर में स्थिर होने पर (केवलकुम्भकम् भवेत्) केवल कुम्भक प्राणायाम होता है।

भावार्थः- शरीर में जब तक प्राण है, तब तक मृत्यु नहीं होती और केवल कुम्भक में प्राण शरीर में स्थित हो जाता है।

यावज्जीवो जपेन्मन्त्रमजपासंख्यकेवलम्।।96।।
अद्यावधि धृतासंख्या विभ्रमं केवलीकृते।
अतएव हि कर्त्तव्यः केवली कुम्भको नरैः।।97।।
केवली चाजपा संख्या द्विगुणा च मनोन्मनी।

अनवयः- जीवः यावत् जीवेत् अजपा संख्यकेवलम् मन्त्रम् जपेत् अन्यावधि धृताम् संख्याम् केवलीकृते विभ्रमम्। ततएव हि नरैः केवली कुम्भक कर्त्तव्यः, केवली मनोन्मनी च अजपा द्विगुणा संख्या (फलम् भवति)।

पदार्थः- (जीवः यावत् जीवेत्) जीव तब तक जीवित रहे (अजपासंख्यकेवलम्) केवल अजपा संख्या पर्यन्त (मन्त्रम् जपेत्) मन्त्र का जप करे (अद्य-अवधि धृता संख्या) जितनी कि संख्या अब तक निर्धारित कर रखी है (केवलीकृते) केवली कुम्भक करने पर ही (विभ्रमं भवेत्) संख्या में परिवर्तन होना चाहिए। (केवलो मनोन्मनी च) केवल कुम्भक और समाधि में (अजपा द्विगुणा संख्या) अजपा की संख्या का दो गुणा फल होता है।

भावार्थः- मनुष्य जब तक जीवित रहे उसे चाहिए कि अजपा जप की संख्या इक्कीस हजार छ सौ बार जपे, जो कि अब तक स्वीकृत संख्या है। केवल कुम्भक करने पर इस संख्या में परिवर्तन हो जाता है। केवल कुम्भक और मनोन्मनी अर्थात् समाधि में इस मन्त्र संख्या जप से दो गुना फल होता है।

नासाभ्याम् वायुमाकृष्य केवलं कुम्भकं चरेत्।।98।।
एकादिकचतुःषष्ठिं धारयेत् प्रथमे दिने।

अन्वयः- नासाभ्याम् वायुम् आकृष्य केवलं कुम्भकम् चरेत् प्रथमे दिने एकादिक चतुःषष्ठिम् धारयेत्।

पदार्थः- (नासाभ्याम् वायुम् आकृष्य) दोनों नासिका मार्गों से वायु को अन्दर लेकर (केवलम् कुम्भकम् चरेत्) केवल कुम्भक का अभ्यास करे, (प्रथमे दिने) प्रथम दिन (एकादिक चतुःषष्ठिम्) एक

से लेकर चौंसठ बार तक (धारयेत्) कुम्भक करे।

भावार्थः- केवल कुम्भक के अभ्यास के लिए पूरक करके कुम्भक करे। प्रथम दिन एक से चौंसठ बार तक इस क्रिया को करे।

केवलमष्टधा **कुर्यात् यामे यामे दिने दिने।।98।।**
अथवा पञ्चधा कुर्याद् यद्वा कथयामि **ते।**
प्रातःमध्याह्नसायाह्नि मध्ये रात्रि चतुर्थके।।99।।
निसन्ध्यमथवा **कुर्यात् स समानं दिने दिने।**

अन्वयः- सः (साधकः) दिने दिने यामे यामे केवलीम् अष्टधा कुर्यात्, अथवा पञ्चधा प्रातःमध्याह्न सायाह्ने रात्रिमध्ये चतुर्थके यद् वा ते कथयामि। अथवा त्रिसन्ध्यम् कुर्यात् दिने दिने समानम्।

पदार्थः- (सः) वह साधक (दिने दिने) प्रतिदिन (यामे यामे) तीन तीन घंटे पर (अष्टधा कुर्यात्) आठ बार अभ्यास करे (अथवा पञ्चधा) अथवा पाँच बार (प्रातः मध्याह्न-सायाह्ने रात्रिमध्ये चतुर्थके) प्रातः दोपहर सायंकाल, मध्य रात्रि तथा रात्रि के चौथे पहर में (अथवा त्रिसन्ध्यम्) अथवा तीन बार (यत् वा) अथवा जैसा मैं कह रहा हूँ, किन्तु (दिने दिने समानम्) प्रतिदिन उसी निर्धारित समय पर करे।

भावार्थः- साधक प्रतिदिन तीन तीन घंटे के अन्तर से आठ बार करे या जैसा मैं कह रहा हूँ—प्रातः दोपहर सायंकाल मध्यरात्रि और रात्रि के चौथे पहर पाँच बार, अथवा प्रातः दोपहर सांयकाल मध्यरात्रि, अथवा प्रातः मध्यदिन और सायंकाल तीन बार केवल कुम्भक के लिए अभ्यास करे, किन्तु करने का समय प्रतिदिन समान रहे।

पञ्चमे च दिने वृद्धिः वारैकं च दिने तथा।।100।।
अजपापरिमाणं च यावत् सिद्धिः प्रजायते।

अन्वयः- पञ्चमे च दिने एक वारम् दिने वृद्धिः अजपापरिमाणम् यावत् सिद्धिः प्रजायते।

पदार्थः- (पञ्चमे च दिने) प्रत्येक पांचवें दिन (दिने एकवारम् वृद्धिः) दिन में एक बार वृद्धि (यावत् अजपा परिमाणम्) जब तक अजपा जप की संख्या तक वृद्धि न हो अथवा (यावत् सिद्धिः प्रजायते) जब तक केवल कुम्भक न सिद्ध हो जाए।

भावार्थः- पांचवें दिन एक बार तक वृद्धि करे, जब तक अजपा परिमाण तक न हो जाये अथवा सिद्धि न मिल जाए।

प्राणायामं केवलीं च तदा वदति योगवित्।
कुम्भके केवली सिद्धे किं न सिद्ध्यति **भूतले।।101।।**

अन्वयः- (यदा) केवलीं प्राणायामम् (वेत्ति) तदा (जनः) योगवित् वदति। केवली कुम्भके सिद्धे भूतले किं न सिध्यति।

पदार्थः- जब साधक (केवलीं प्राणायामम्) केवली प्राणायाम को (वेत्ति) जान लेता है (तदा) तब लोग उसे (योगवित्) योग को जानने वाला कहते हैं, (केवलीकुम्भके सिद्धे) केवली कुम्भक के सिद्ध हो जाने पर (भूतले किम् न सिध्यति) संसार में क्या सिद्ध नहीं हो जाता है।

भावार्थः- जब साधक को केवली कुम्भक सिद्ध हो जाता है, तब उसे लोग योग का ज़ानकार या योगी कहते हैं। केवल कुम्भक सिद्ध होने पर योगी को क्या सिद्ध नहीं होता, अर्थात् उसे किसी अन्य सिद्धि की आवश्यकता नहीं रह जाती।

।। इति श्रीघेरण्डसंहितायां घेरण्ड-चण्डकापालि संवादे प्राणायाम प्रयोगो नाम पञ्चमः उपदेशः।।

इस प्रकार घेरण्डसंहिता में घेरण्ड चण्ड कापालि के संवाद में प्राणायाम-प्रयोग नामक पाँचवां उपदेश पूर्ण हुआ।

अथ षष्ठः उपदेशः

ध्यानयोगः

स्थूलं ज्योतिः तथा सूक्ष्मं ध्यानस्य त्रिविधं विदुः।
स्थूलं मूर्त्तिमयं प्रोक्तं ज्योतिस्तेजोमयं तथा।
सूक्ष्मं विन्दुमयं ब्रह्म कुण्डली परदेवता।।1।।

अन्वयः- ध्यानस्य (आलम्बनम्) त्रिविधम् विदुः स्थूलम्, ज्योतिः सूक्ष्मम्। स्थूलम् मूर्त्तिमयम् प्रोक्तम् तथा तेजोमयम् ज्योतिः, सूक्ष्मम् विन्दु मयम् ब्रह्म, परदेवता कुण्डली।

पदार्थः- (ध्यानस्य) ध्यान के आलम्बन (त्रिविधम् विदुः) तीन प्रकार के माने गये हैं (स्थूलम्) ठोस द्रव्य (ज्योतिः) प्रकाशरूप और (सूक्ष्मम्) जिसे इन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं कर सकते। (स्थूलं मूर्तिमयम् प्रोक्तम्) स्थूलमूर्तिमय कहा गया है, (ज्योतिः तेजोमय) ज्योति प्रकाशरूप है (सूक्ष्मम् बिन्दुमयं ब्रह्म) सूक्ष्म बिन्दुरूप ब्रह्म (कुण्डली परदेवता) अथवा परमदेवता कुण्डली।

भावार्थः- ध्यान के आलम्बन तीन हैं स्थूल ज्योति और सूक्ष्म, स्थूल मूर्त्त पदार्थ है, ज्योति तेजमय है और सूक्ष्म बिन्दुमय ब्रह्म और परदेवता कुण्डली है।

स्थूलध्यानः-

स्वकीये हृदये ध्यायेत् सुधासागरमुत्तमम्।
तन्मध्ये रत्नद्वीपं तु सुरत्नबालुकामयम्।।2।।
चतुर्दिक्षु निम्बतरुः बहु पुष्पसमन्वितः।
निम्बोपवनसंकूले वेष्टितम् परिखा इव।।3।।

अन्वयः- स्वकीय हृदये उत्तमं सुधासागरम् ध्यायेत्, तत् मध्ये तु सुरत्नबालुकामयम् रत्नद्वीपम् (तस्य) चतुर्दिक्षु बहुपुष्पसमन्वितः निम्बतरुः निम्बोपवनसंकूले परिखा इव परिवेष्टितम्।

पदार्थः- (स्वकीय हृदये) अपने हृदय में (उत्तमम् सुधासागरम्) उत्तम सुधा के सागर का (ध्यायेत्) ध्यान करे (तत् मध्ये तु) और उसके मध्य में (सुरत्नबालुकामयम् रत्नद्वीपं) सुन्दर रत्नमय बालू वाला रत्नद्वीप, उसके (चतुर्दिक्षु) उसके चारों ओर (बहुपुष्पसमन्वितः निम्बतरुः) बहु फलों से लदा हुआ नीम का वृक्ष (निम्बोपवनसंकूले) नीम के उद्यान के चारों ओर (परिखा इव परिवेष्टितम्) परिखा अर्थात् खाई के समान चारों दिशाओं में ....।

भावार्थः- अपने हृदय में उत्तम अमृत के सागर का ध्यान करे, उस सागर के मध्य में रत्नमयबालू वाले रत्नद्वीप का ध्यान करे, जो फूलों से लदे हुए नीम के वक्षों से युक्त है और नीम के उद्यान के चारों ओर खाई के समान....।

मालतीमल्लिका जाती केशरैः चम्पकैस्तथा।
पारिजातैः स्थलैः पद्मैः गन्धामोदितदिङ्मुखैः।।4।।
तन्मध्ये संस्मरेद् योगी कल्पवृक्षम्मनोहरम्।
बहुशाखा चतुर्वेदं नित्यं पुष्पफलान्वितम्।।5।।

अन्वयः- मालती-मल्लिका-जातिकेशरैः तथा चम्पकैः पारिजातैः स्थलैः पद्मैः गन्ध-आमोदित दिक्मुखैः तत् मध्ये योगी बहुशाखाचर्तुवेदम् नित्यपुष्पफलान्वितम् मनोहरम् कल्पवृक्षम् संस्मरेत्।

पदार्थः- (मालती-मल्लिका-जातिकेशरैः) मालती पुष्प मल्लिका का पुष्प चमेली और केशर से (चम्पकैः) चम्पा के पुष्पों से और (स्थलैःकमलैः पारिजातैः) स्थलकमल तथा हरशृङ्गार के पुष्पों की सुगन्ध दिशाओं को सुगन्धित कर रही है (तत् मध्ये) इन सबके मध्य में (बहुशाखाचतुर्वेदं) बहुत शाखाओं सहित चार वेद रूपी शाखाओं वाले (नित्यं पुष्पफलान्वितम्) नित्य फूलों और फलों से युक्त मनोहर कल्पवृक्ष को स्मरण करे।

भावार्थः- उपर्युक्त विवरणयुक्त उद्यान में मालती-मल्लिका चमेली केशर चम्पा हरशृङ्गार स्थलकमल के पुष्पों से सुगन्ध से वहाँ दिशाएँ सुगन्धित हो रही है। वहाँ उद्यान में अनेक शाखाओं से युक्त

चार वेदरूपी शाखाओं और फूलों से युक्त मनोहर कल्पवृक्ष का स्मरण करे।

भ्रमराः कोकिलास्तत्र गुञ्जन्ति निनदन्ति **च।**
ध्यायेत्तत्र स्थिरो भूत्वा महामणिक्यमण्डपम्।।6।।

अन्वयः- तत्र भ्रमराः गुञ्जन्ति कोकिलाः च निनदन्ति, स्थिरो भूत्वा तत्र मणिमाणिक्यमण्डपम् ध्यायेत्।

पदार्थः- (तत्र भ्रमराः गुञ्जन्ति) वहाँ भौरे गुञ्जार कर रहे हैं (कोकिलाः च निनदन्ति) कोयल मधुर गान कर रही है (स्थिरो भूत्वा) स्थिर चित्त होकर (तत्र) वहाँ (मणिमाणिक्यमण्डपम् ध्यायेत्) मणियों और माणिक्य से बने मण्डप का ध्यान करे।

भावार्थः- वहाँ उद्यान में भौरे गुञ्जार कर रहे हैं, कोयल मधुर गान कर रही है, वहाँ स्थिरचित्त होकर मणियों और माणिक्य से बने हुए मण्डप का ध्यान करे।

तन्मध्ये तु स्मरेद् योगी पर्यङ्कम् सुमनोहरम्।
तत्रेष्टदेवतां **ध्यायेद् यद् ध्यानं** गुरुभाषितम्।।7।।
यस्य देवस्य यद्रूपं यथा भूषणवाहनम्।
तद्रूपं ध्यायते नित्यं स्थूलध्यानमिदं **विदुः**।।8।।

अन्वयः- योगी तत्-मध्ये सुमनोहरम् पर्यङ्कम् स्मरेत् तत्र यत् ध्यानं गुरुभाषितम् यस्य देवस्य यद्रूपम् यथा भूषण-वाहनम् इष्टदेवताम् ध्यायेत्। इदं स्थूलध्यानं विदुः।

पदार्थः- (योगी) योग का साधक (तत् मध्ये) उसके बीच में (सुमनोहरम् पर्यङ्कम्) अत्यन्त सुन्दर पलङ्ग का (स्मरेत्) स्मरण करे (तत्र) वहाँ (यत् ध्यानम् गुरुभाषितम्) जिसका ध्यान गुरु ने बताया है तथा (यस्य देवस्य यत् रूपम्) जिस देवता का जैसा रूप है (यथा भूषण-वाहनम्) जो भूषण और उसकी सवारी है उनके साथ (इष्टदेवताम् ध्यायेत्) इष्टदेवता का ध्यान करे (इदं स्थूलध्यानं विदुः) इसे स्थूल ध्यान कहते हैं।

भावार्थः- योगी उस अत्यन्त मनोहर उद्यान के बीच सुन्दर पर्यङ्क का ध्यान करके उस पर गुरु ने जिस देवता का जिन आभूषणों और सवारी का कथन किया है, उसका ध्यान करे। इसे स्थूल ध्यान कहते हैं।

सहस्रारे महापद्मे कर्णिकायां विचिन्तयेत्।
विलग्नं सहितं पद्मं द्वादशैर्दलसंयुतम्।।9।।
शुक्लवर्ण **महातेजो** द्वादशैर्बीजभूषितम्।
हसक्षमलवरयूंहसखफ्रें यथाक्रमम्।।10।।
तन्मध्ये कर्णिकायान्तु अकथादिरेखात्रयम्।
हलक्षकोणसंयुक्तं प्रणवं तत्र वर्त्तते।।11।।
नादविन्दुमयं **पीठं** ध्यायेत्तत्र मनोहरम्।
तत्रोपरि हंसयुग्मं पादुका तत्र वर्त्तते।।12।।
ध्यायेत् तत्र गुरुं देवं द्विभुजं च त्रिलोचनम्।
श्वेताम्बरधरं देवं शुक्लगन्धानुलेपनम्।।13।।

अन्वयः- सहस्रारे महापद्मे कर्णिकायां **विलग्नं सहितं** द्वादशैर्दलसंयुतम् शुक्लवर्ण **महातेजः द्वादशैः** बीजभूषितम् हसक्षमलवरयूंहसखफ्रें **यथाक्रमम् तन्मध्ये** कर्णिकायान्तु अकथादि रेखात्रयम् तत्र हलक्षकोणसंयुतम् **प्रणवं वर्त्तते(तम्)** विचिन्तयेत्। **तत्र** नादविन्दुमयं **मनोहरम् पीठम् ध्यायेत्। तत्र उपरि** हंसयुग्मम् **तत्र पादुका वर्त्तते तत्र च द्विभूजम्** त्रिलोचनम् श्वेताम्बरधरम् शुक्लगन्धानुलेपनम् देवम् गुरुम् ध्यायेत्।

पदार्थः- **(सहस्रारे पद्मे) सहस्रार पद्म में** (कर्णिकायाम्) **कर्णिका अर्थात् मध्य में** (विलग्नं सहितम्) **उसमें लगा हुआ** (द्वादशैः दलैः संयुतम्) **बारह पंखुड़ियों से युक्त** (हसक्षमलवर यूंहसखफ्रें द्वादशैःबीजै यथाक्रमम् भूषितम्) हसक्षमलवरयूंहसखफ्रें **इन बीजों से यथाक्रम** सुभूषित (तत् मध्ये कर्णिकायाम्) **उसके बीच में कर्णिका में** (अकथ रेखात्रयम्) **अकथ से युक्त तीन रेखाएँ** (तत्र) **उन तीन मिली हुई**

रेखाओं में (हलक्ष कोण संयुतम्) हलक्ष वर्णों से युक्त कोण से युक्त (प्रणवम् वर्त्तते) प्रणव अर्थात् ओम् है (विचिन्तयेत्) उसका चिन्तन करे (तत्र नादविन्दुमयम्) नाद और विन्दुमय (मनोहारम् पीठम् ध्यायेत्) मनोहर पीठ का ध्यान करे (तत्र च द्विभुजम्) वहाँ पर दो भुजा से युक्त (त्रिलोचनम्) तीन नेत्रों से युक्त (श्वेताम्बरधरम्) श्वेतवस्त्र पहने हुए (शुक्लगन्धानुलेपनम्) श्वेत वर्ण के सुगन्धितलेप से युक्त (देवम् गुरुम् ध्यायेत्) गुरुदेव का ध्यान करे।

भावार्थः- सहस्रार पद्म की कर्णिका में लगा हुआ बारह पंखुड़ियों वाला कमल है, जिसकी पंखुड़ियों पर हसक्षमलवरयूंसखफ्रें बीजाक्षर यथाक्रम लिखे हुए उसके मध्य में अकथ वर्ण युक्त मिली हुई तीन रेखाएँ अलक्ष वर्णों से युक्त तीन कोण है साधक वहाँ प्रणव (ओंकार) का चिन्तन करे। वहाँ पर नाद और विन्दु मनोहर पीठ है, साधक उसका ध्यान करे उसके ऊपर दो हंस और पादुका है, वहाँ पर दो भुजाओं और तीन नेत्रों वाले गुरुदेव विराजमान हैं जो श्वेत वस्त्र और शुभ्र सुगन्धित लेप लगाये हुए है। उनका ध्यान करे।

शुक्लपुष्पमयम्माल्यं रक्तशक्तिसमन्वितम्।
एवं विधगुरोः ध्यानात् स्थूल ध्यानं प्रसिद्धयति।।14।।

अन्वयः- शुक्लपुष्पमयं माल्यम् रक्तशक्तिसमन्वितम्, एवंविध गुरोः ध्यानात् स्थूलध्यानं प्रसिध्यति।

पदार्थः- वे गुरु (शुक्लपुष्पमयं माल्यम्) श्वेत पुष्पों वाला माला पहने हुए हैं (रक्तशक्तिसमन्वितम्) लाल शक्ति से युक्त हैं (एवंविधगुरोः ध्यानात्) इस प्रकार के गुरु का ध्यान करने से (स्थूलध्यानम् प्रसिद्धयति) स्थूल ध्यान सिद्ध हो जाता है।

भावार्थः- पूर्व वर्णित गुरु श्वेत फूलों की माला पहने हैं और लालशक्ति से युक्त हैं, इसप्रकार के गुरु का ध्यान करने से स्थूल ध्यान सिद्ध हो जाता है।

ज्योतिध्यानः-

कथितं स्थूलध्यानन्तु तेजोध्यानं शृणुष्व मे।
यद् ध्यानेन योगसिद्धिरात्मप्रत्यक्षमेव च।।15।।

अन्वयः- स्थूलध्यानम् तु कथितम्, मे तेजो ध्यानम् शृणुष्व, यत् ध्यानेन योगसिद्धिः आत्मप्रत्यक्षम् एव च (भवति)।

पदार्थः- (स्थूलध्यानम् तु कथितम्) स्थूल ध्यान तो कह दिया है (तेजो ध्यानम् मे शृणुष्व) तेजो ध्यान मुझ से सुनो। (यत् ध्यानेन) जिसके ध्यान से (योगसिद्धिः) योग में सिद्धि (आत्मप्रत्यक्षम् एव च) और आत्मा का प्रत्यक्ष होता है।

भावार्थः- स्थूल ध्यान बता दिया है, अब ज्योतिध्यान मुझसे सुनो- जिस ध्यान से योग में सिद्धि मिल जाती है और आत्मा का प्रत्यक्ष भी हो जाता है।

मूलाधारे कुण्डलिनी भुजंगाकाररूपिणी।
जीवात्मा तिष्ठति तत्र प्रदीपकलिकाकृतिः।
ध्यायेत्तेजोमयं ब्रह्म तेजोध्यानम्परात्परम्।।16।।

अन्वयः- मूलाधारे भुजंगाकाररूपिणी कुण्डलिनी तत्र प्रदीपकलिका- आकृतिः जीवात्मा तिष्ठति तेजोमयं ब्रह्म ध्यायेत् (तत्) परात्परम् तेजोध्यानम्।

पदार्थः- (मूलाधारे) मूलाधार में (भुजंगाकृतिः) सर्प की आकृति वाली (कुण्डलिनी) कुण्डलिनी है। (तत्र) वहाँ पर (प्रदीपकलिका- आकृतिः जीवात्मा) दीपक की लौ की आकृति वाला जीवात्मा (तिष्ठति) विद्यमान रहता है, वहाँ पर (तेजोमयम्) प्रकाशस्वरूप (ब्रह्म ध्यायेत्) ब्रह्म का ध्यान करे। यह (परात्परम् तेजो ध्यानम्) परम श्रेष्ठ तेजो ध्यान है।

भावार्थः- मूलाधार में सर्प की आकृति वाली कुण्डलिनी है। जहाँ दीपक की लौ के समान जीवात्मा निवास करता है, वहाँ पर तेजोमय ब्रह्म का ध्यान करना सर्वश्रेष्ठ ध्यान है।

भ्रुवोर्मध्ये मनोर्ध्वे च यत्तेजः प्रणवात्मकम्।
ध्यायेज्ज्वालावलीयुक्तं तेजो ध्यानं तदेव हि।।17।।

अन्वयः- भ्रुवोः मध्ये मनः, ऊर्ध्वे च यत् प्रणवात्मकम् ज्वालावलीयुक्तम् तेजः तत् ध्यायेत् तदेव हि तेजो ध्यानम्।

पदार्थः- (भ्रुवोः मध्ये) दोनों भौहों के बीच (मनः ऊर्ध्वे च) और मन के ऊपर (यत् प्रणवात्मकम्) ओङ्कार स्वरूप (ज्वालावलीयुक्तम्) अनन्त ज्वालाओं से युक्त (तेजः) ज्योति का (ध्यायेत्) ध्यान करे (तदेव हि तेजोध्यानम्) वही तेजो ध्यान है।

भावार्थः- दोनों भौहों के बीच और मन से ऊपर जो अनन्त ज्वालाओं से युक्त प्रणवात्मक अर्थात् ओङ्कार रूप तेज है उसका ध्यान करना भी तेजोध्यान ही है।

सूक्ष्मध्यानः-

तेजो ध्यानं श्रुतं चण्ड सूक्ष्मध्यानं वदाम्यहम्।
बहु भाग्यवशात् यस्य कुण्डलीजागृता भवेत्।।18।।
आत्मनः सहयोगेन नेत्ररन्ध्राद् विनिर्गता।
विहरेद् राजमार्गे च चंचलत्वान्न दृश्यते।।19।।

अन्वयः- चण्ड! तेजो ध्यानम् श्रुतम् अहम् सूक्ष्मध्यानम् वदामि। यस्य बहु भाग्यवशात् कुण्डली जागृता भवेत्, आत्मनः सहयोगेन नेत्र रन्ध्रात् विनिर्गता राजमार्गे विहरेत्, चंचलत्वात् च न दृश्यते।

पदार्थः- (चण्ड!) हे चण्ड! (तेजोध्यानम् श्रुतम्) तुमने तेजो ध्यान सुना है (अहम्) मैं (सूक्ष्मध्यानम् वदामि) सूक्ष्मध्यान बता रहा हूँ। (यस्य) जिसकी (बहुभाग्यवशात्) बहुत भाग्य से (कुण्डली जागृता भवेत्) कुण्डली जागृत हो जाए (आत्मनः सहयोगेन) आत्मा के सहयोग से (नेत्ररन्ध्रात्) नेत्र के मार्ग से (विनिर्गता) निकली हुई (राजमार्गे विहरेत्) राजमार्ग पर विहार करती है (चञ्चलत्वात् न दृश्यते) चंचल होने के कारण वह दिखाई नहीं पड़ती।

भावार्थः- हे चण्ड! तुमने तेजो ध्यान सुन लिया है अब मैं सूक्ष्म ध्यान बता रहा हूँ सुनो—जिसकी कुण्डली बहुतभाग्यवश जग जाती है वह आत्मा के सहयोग से नेत्र के मार्ग से बाहर जाकर राजमार्ग में विहार करती है, किन्तु चञ्चलता के कारण दिखाई नहीं पड़ती।

शाम्भवीमुद्रया योगी ध्यानयोगे हि सिद्धयति।
सूक्ष्मध्यानमिदं गोप्यं देवानामपि दुलर्भम्।।20।।

अन्वयः- योगी शाम्भवीमुद्रया ध्यानयोगे हि सिध्यति, देवानाम् अपि दुर्लभम् इदम् सूक्ष्मध्यानं गोप्यम्।

पदार्थः- (योगी) योग का साधक (शाम्भवी मुद्रया ध्यानयोगे हि) शाम्भवीमुद्रा द्वारा ध्यानयोग में (सिध्यति) सिद्ध होता है। (देवानाम् अपि दुर्लभम्) देवों के लिए भी दुर्लभ (सूक्ष्मध्यानं परम् गोप्यम्) सूक्ष्मध्यान अत्यन्त गुप्त रखने योग्य है।

भावार्थः- योगी शाम्भवीमुद्रा से ध्यानयोग में सिद्धि पाता है। यह देवों को भी दुर्लभ है। अतः इसे अत्यन्त गुप्त रखना चाहिए।

स्थूलध्यानाच्छतगुणं तेजोध्यानं प्रचक्षते।
तेजोध्यानाल्लक्षगुणं सूक्ष्मध्यानम्परात्परम्।।21।।

अन्वयः- तेजोध्यानम् स्थूलध्यानात् शतगुणम् प्रचक्षते, सूक्ष्मध्यानम् तेजोध्यानात् लक्षगुणम् परात्परम्।

पदार्थः- (तेजोध्यानम्) तेजो ध्यान (स्थूलध्यानात्) स्थूलध्यान की अपेक्षा (शतगुणम्) सौ गुना श्रेष्ठ है और (सूक्ष्मध्यानम् तेजोध्यानात् लक्षगुणम्) सूक्ष्म ध्यान तेजोध्यान से लाखगुना (परात्परम्) परम श्रेष्ठ है।

भावार्थः- तेजोध्यान स्थूल ध्यान से सौ गुना श्रेष्ठ है और सूक्ष्मध्यान तेजोध्यान से लाख गुना परम श्रेष्ठ है।

इति ते कथितं चण्ड! ध्यानयोगं सुदुर्लभम्।
आत्मासाक्षाद् भवेद् यस्मात्तस्माद् ध्यानं विशिष्यते।।22।।

अन्वयः- चण्ड! ते सुदुर्लभम् ध्यानयोगम् कथितम्। यस्मात् आत्मा साक्षात् भवेत्, तस्मात् ध्यानम् विशिष्यते।

पदार्थः- (चण्ड!) हे चण्ड! (ते) तुम्हें (सुदुर्लभम् ध्यानयोगम् कथितम्) अत्यन्त दुर्लभ ध्यानयोग मैंने बताया है। (यस्मात् आत्मा साक्षात् भवेत्) क्योंकि इससे आत्मा का साक्षात्कार होता है, (तस्मात् ध्यानम् विशिष्यते) अतः ध्यानयोग सब योगसाधनाओं से श्रेष्ठ है।

भावार्थः- हे चण्ड! मैंने तुम्हें ध्यानयोग बता दिया है। क्योंकि इससे आत्मा का साक्षात्कार होता है, इसलिए सब साधनों में यह श्रेष्ठ है।

।इति श्रीघेरण्डसंहितायाम् घेरण्डचण्डकापालिसंवादे घटस्थयोगे ध्यानयोगो नाम षष्ठ उपदेशः।।

।इस प्रकार घेरण्डसंहिता में घेरण्ड और चण्डकापालिके संवाद में घटस्थयोग में ध्यानयोगनाम का छठा उपदेश पूर्ण हुआ।।

अथ सप्तम उपदेशः

समाधियोग

समाधिश्च परो योगो बहु भाग्येन लभ्यते।
गुरोः कृपाप्रसादेन प्राप्यते गुरुभक्तितः।।1।।

अन्वयः- समाधिश्च परः योगः बहुभाग्येन लभ्यते। गुरुभक्तितः गुरोः कृपाप्रसादेन प्राप्यते।

पदार्थः- (समाधिः परः योगः) समाधि योग की उत्कृष्ट स्थिति है (बहु भाग्येन) बड़े भाग्य से (लभ्यते) प्राप्त होती है। यह (गुरुभक्तितः) गुरु की भक्ति के फलस्वरूप (गुरोःकृपाप्रसादेन) गुरु की कृपारूपी प्रसाद से (प्राप्यते) प्राप्त होती है।

भावार्थः- समाधियोग की सर्वश्रेष्ठ स्थिति है, यह बहुत भाग्य से मिलती है। गुरु की भक्ति से गुरु की कृपा होने पर समाधि का लाभ होता है।

विद्याप्रतीतिः स्वगुरुप्रतीतिः आत्मप्रतीतिः मनसः प्रबोधः।
दिने दिने यस्य भवेत्सयोगी सुशोभनाभ्यासमुपैति सद्यः।।2।।

अन्वयः- यस्य दिने दिने विद्याप्रतीतिः स्वगुरुप्रतीतिः आत्मप्रतीतिः मनसः प्रबोधः भवेत् स योगी सद्यः सुशोभनम् अभ्यासम् उपैति।

पदार्थः- (यस्य) जिसे (दिने दिने) प्रतिदिन (विद्याप्रतीतिः) नवीन ज्ञान का बोध (स्वगुरुप्रतीतिः) अपने गुरु की महिमा का बोध (आत्मप्रतीतिः) स्वयं का अथवा आत्मतत्त्व का बोध, (मनसः प्रबोधः) मन में तत्त्वज्ञान (भवेत्) होवे (सः योगी) वह योगी (सद्यः) अतिशीघ्र (सुशोभनम् अभ्यासम्) अभ्यास की उत्तम स्थिति अर्थात् सफलता को (उपैत्ति) प्राप्त कर लेता है।

भावार्थः- जिसे नवीन ज्ञान अपने गुरु की उत्कृष्टता का बोध आत्मतत्त्व का बोध और मन में ज्ञान अर्थात् विषयों के प्रति विरक्ति

हो उस योगी की साधना शीघ्र सफल होने वाली है, ऐसा समझना चाहिए।

घटाद्भिन्नं मनः कृत्वा ऐक्यं कृत्वा परात्मनि।
समाधिन्तद्विजानीयान्मुक्तसंज्ञो **दशादिभिः**।।3।।

अन्वयः- मनः घटात् भिन्नं कृत्वा पर-आत्मनि ऐक्यम् कृत्वा (यदा तिष्ठेत्) तत् समाधिम् विजानीयात्, (तदायोगी) दशादिभिः उन्मुक्त संज्ञो (भवति)।

पदार्थः- (मनः घटात् भिन्नं कृत्वा) मन को शरीर से अलग करके (पर आत्मनि ऐक्यं कृत्वा) और परम-आत्मा से संयुक्त करके जब स्थित होता है (तत् समाधिं विजानीयात्) उस स्थिति को समाधि समझे। तब योगी (दशा-आदिभिः उन्मुक्तसंज्ञः) जीवन की विविध दशाओं से उन्मुक्त होता है।

भावार्थः- जब मन शरीर से भिन्न होकर परम-आत्मा से संयुक्त होता है, तब उस स्थिति को समाधि समझना चाहिए, उसके बाद योगी जीवन की सभी स्थितियों (दशाओं) और जन्म मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

अहम्ब्रह्म न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान्।।4।।

अन्वयः- अहम् ब्रह्म अन्यः न अस्मि, अहम् ब्रह्म एव शोकभाक् न, अहम् सच्चिदानन्दरूपः नित्यमुक्तस्वभाववान् (अस्मि)।

पदार्थः- (अहम् ब्रह्म) मैं ब्रह्म हूँ (शोकभाक् न) दुःखयुक्त नहीं हूँ (अहम् सच्चिदानन्दरूपः) मैं सत् चित् और आनन्दस्वरूप हूँ। (नित्यमुक्तस्वभाववान्) मैं नित्य मुक्तस्वभाववाला हूँ।

भावार्थः- मैं ब्रह्म हूँ उससे अन्य नहीं। ब्रह्म होने से मैं दुःख शोक युक्त नहीं हूँ। मैं सच्चिदानन्द स्वरूप स्वभाव से नित्य मुक्त हूँ।

शाम्भव्या चैव खेचर्या भ्रामर्या योनिमुद्रया।
ध्यानं नादं रसानन्दं लयसिद्धिश्चतुर्विधा।।5।।
पञ्चधा भक्तियोगेन मनोमूर्छा च षड्विधा।
षड्विधोऽयं राजयोगः प्रत्येकमवधारय।।6।।

अन्वयः- शाम्भव्य । खेचर्या भ्रामर्या योनिमुद्रया च ध्यानं नादम् रसानन्दम् लयसिद्धिः चतुर्विधा, भक्तियोगेन पञ्चधा मनोमूर्छा च षट्विद्या अयम् राजयोगः षड्विधः प्रत्येकम् अवधारय।

पदार्थः- (शाम्भव्या) शाम्भवी मुद्रा के द्वारा (खेचर्या) खेचरीमुद्रा के द्वारा (भ्रामर्या) भ्रामरी प्राणायाम द्वारा (योनिमुद्रया) के द्वारा होने वाले (ध्यानम् नादम् रसानन्दम् लयसिद्धिः) ध्यान नाद रसानन्द और लय सिद्धि अर्थात् समाधि (चतुर्विधा) चार प्रकार की है, (भक्तियोगेन पञ्चधा) भक्तियोग को सम्मिलित करने पाँच प्रकार (मनो मूर्छा च) और मनोमूर्छा को संयुक्त करने पर (षड्विधा) अर्थात् छः प्रकार की होती है। (अयं राजयोगः षड्विधः) इस प्रकार यह राजयोग अर्थात् समाधि छः प्रकार का है (प्रत्येकं अवधारय) प्रत्येक को समझो।

भावार्थः- समाधि छः प्रकार की साधनाओं से होती है। शाम्भवीमुद्रा से, खेचरीमुद्रा से, भ्रामरी प्राणायाम से, योनिमुद्रा से, भक्तियोग से और मनोमूर्छा की साधना से। इन साधनाओं में किसी में ध्यान की प्रधानता है, किसी में नाद की, किसी में लय की, किसी में रसानन्द की। इन्हें अग्रिम पद्यों में समझो।

शाम्भवी से समाधिः-

शाम्भवीं मुद्रिकां कृत्वा आत्मप्रत्यक्षमानयेत्।
बिन्दुम्ब्रह्म सकृत् दृष्ट्वा मनः तत्र विनियोजयेत्।।7।।
खमध्ये कुरु चात्मानम् आत्ममध्ये **च खं कुरु।**
आत्मानं खमयं दृष्ट्वा न किञ्चिदपि **बाधते।।8।।**
सदानन्दमयो **भूत्वा** समाधिस्थो **भवेन्नरः।**

अन्वयः- शाम्भवीम् मुद्राम् कृत्वा आत्मप्रत्यक्षम् आनयेत्, बिन्दुम् ब्रह्म सकृत् दृष्ट्वा तत्र मनः नियोजयेत्। खमध्ये आत्मनम् कुरु, आत्ममध्ये च खं कुरु, खमयम् आत्मानम् दृष्ट्वा किञ्चित् अपि न बाधते (अतः) सदा आनन्दमयो भूत्वा नरः समाधिस्थो भवेत्।

पदार्थः- (शाम्भवीम् मुद्राम् कृत्वा) शाम्भवी मुद्रा करके (आत्मप्रत्यक्षम् आनयेत्) आत्मा का प्रत्यक्ष करे (बिन्दुम् ब्रह्म)

बिन्दुरूपब्रह्म को (सकृत् दृष्ट्वा) एक बार देखकर (तत्र मन नियोजयेत्) वहाँ मन को एकाग्र करे (खमध्ये आत्मनं कुरु) बिन्दुरूप आकाश में आत्मा को करो (आत्ममध्ये च खं कुरु) और आत्मा के मध्य में बिन्दु को करो। (आत्मानम् खमयं दृष्ट्वा) बिन्दुमय आत्मा का साक्षात्कार कर लेने पर (किञ्चित् अपि न बाधते) कुछ भी कष्ट कर नहीं होता, इसलिए (नरः सदा आनन्दमयो भूत्वा) मनुष्य को चाहिए कि सर्वदा आनन्दमय होकर (समाधिस्थो भवेत्) समाधिस्थ होवे।

भावार्थः- शाम्भवी मुद्रा करके साधक आत्मा का साक्षात्कार करे। विन्दुरूप ब्रह्म का साक्षात्कार एक बाद होने पर उस पर ही मन को एकाग्र करे और विन्दु से आत्मा को और आत्म में विन्दु (ख—आकाश के समान व्यापक ब्रह्म) देख लेने पर कोई कष्ट साधक को नहीं होता इसलिए साधक सदा आनन्दमय होकर समाधिस्थ होवे।

साधनात् खेचरीमुद्रा रसनोर्ध्वं गता यदा।।9।।
तदा समाधिसिद्धिः स्यात् हित्वा साधारणक्रियाम्।

अन्वयः- खेचरीमुद्रा साधनात् यदा रसना ऊर्ध्वंगता साधारणक्रियां हित्वा तदा समाधिसिद्धिः स्यात्।

पदार्थः- (खेचरीमुद्रासाधनात्) खेचरीमुद्रा की साधना से (यदा रसना ऊर्ध्वं गता) जब जिह्वा ऊपर चली जाती है (तदा समाधि सिद्धिः स्यात्) तब समाधि सिद्ध हो जाती है। (साधारणक्रियां हित्वा) अन्य साधारणक्रिया के विना भी।

भावार्थः- खेचरीमुद्रा की साधना में जब जीभ ऊपर को चली जाती है, तब अन्य क्रियाओं के विना ही समाधि सिद्ध हो जाती है।

अनिलम्मन्दवेगेन भ्रामरीकुम्भकं चरेत्।।10।।
मन्दं विरेचयेद् वायुं भृङ्गनादस्ततो भवेत्।
अन्तस्थं भ्रामरीनादं श्रुत्वा तत्र मनो नयेत्।।11।।

समाधिर्जायते तत्र आनन्दः सोऽहमित्यतः।

अन्वयः- अनिलं मन्दवेगेन (विरेचयेन्) भ्रामरीकुम्भकम् चरेत्, वायुम् मन्दम् विरेचयेत् ततः भृङ्गनादः भवेत्। अन्तस्थं भ्रामरीनादं श्रुत्वा तत्र मनः नयेत् (ततः) समाधिः जायते तत्र 'सोऽहम्' इत्यतः आनन्दः (भवति)।

पदार्थः- (अनिलं मन्दवेगेन) वायु को धीमे धीमे निकालते हुए (भ्रामरीकुम्भकं चरेत्) भ्रामरी कुम्भक करे (वायुं मन्दं मन्दं विरेचयेत्) जब वायु को धीरे धीरे निकालते हैं (ततः भृङ्गनादः भवेत्) तब भृङ्ग के गुञ्जन के समान नाद होता है। (अन्तस्थं भृङ्गनादं श्रुत्वा) अन्दर हो रहे भृङ्गनाद को सुनकर (तत्र मनः निवेशयेत्) वहाँ मन को एकाग्र करे उससे (समाधिः जायते) समाधि लग जाती है (तत्र) वहाँ (सोऽहम् इत्यतः आनन्दः) 'सोऽहम्' इस अनुभूति के साथ आनन्द का अनुभव होता है।

भावार्थः- वायु को धीरे धीरे निकालते हुए भ्रामरी कुम्भक करे। जब वायु को धीरे निकालते हैं, तब भृङ्गनाद सुनाई देता है, उस अन्दर के भृंगनाद को सुनकर उस पर मन को एकाग्र करे। इससे समाधि लग जाती है और 'सोऽहम्' अनुभूति से परम आनन्द मिलता है।

योनिमुद्रां समासाद्य स्वयं शक्तिमयो भवेत्।।12।।
सुशृंगाररसेनैव विहरेत्परमात्मनि।
आनन्दमयः संभूत्वा ऐक्यं ब्रह्मणि सम्भवेत्।।13।।
अहम्ब्रह्मेति वाऽद्वैतं समाधिस्तेन जायते।

अन्वयः- योनिमुद्राम् समासाद्य स्वयं शक्तिमयः भवेत् सुशृंगाररसेन एव परमात्मनि विहरेत्, आनन्दमयः संभूत्वा ब्रह्मणि ऐक्यं सम्भवेत्, अहम् ब्रह्म इति वा अद्वैतम् (भवेत्) तेन समाधिः जायते।

पदार्थः- (योनिमुद्रां समासाद्य) योनिमुद्रा की स्थिति में आकर (स्वयं शक्तिमयः भवेत्) स्वयं शक्ति स्वरूप हो जाए उससे (सुशृंगार रसेन) प्रेमरस के साथ (परमात्मनि विहरेत्) परमात्मा के साथ विहार करे (आनन्दमयः भूत्वा) आनन्दमय होकर (ब्रह्मणि ऐक्यम् सम्भवेत्)

ब्रह्म के साथ एकत्व की भावना करे (अम् ब्रह्म इति वा अद्वैतम्) अथवा 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकार अद्वैत की भावना करे (तेन समाधिः जायते) इससे समाधि लग जाती है।

भावार्थः- योनिमुद्रा की स्थिति में आकर स्वयम् शक्तिमय हो जाए और परा प्रेमा भक्ति के द्वारा परमात्मा के साथ विहार करे। इस प्रकार आनन्दमय होकर ब्रह्म के साथ एकत्व की भावना करे या मैं ब्रह्म से अभिन्न हूँ इस अभेद की भावना करे। इससे समाधि सिद्ध हो जाती है।

स्वकीये हृदये ध्यायेद् इष्टदेवस्वरूपकम्।।14।।
चिन्तयेद् भक्तियोगेन परमाह्लादपूर्वकम्।
आनन्दाश्रुपुलकेन दशाभावः प्रजायते।।15।।
समाधिः सम्भवेत्तेन सम्भवेच्च मनोन्मनी।

अन्वयः- स्वकीये हृदये इष्टदेवता स्वरूपकम् ध्यायेत्, परम आह्लादपूर्वकं भक्तियोगेन चिन्तयेत्, आनन्द-अश्रुपुलकेन दशाभावः प्रजायते तेन समाधिः सम्भवेत् उन्मनी च सम्भवेत्।

पदार्थः- (स्वकीये हृदये) अपने हृदय में (इष्टदेवतास्वरूपकम्) अपने इष्टदेवता के स्वरूप का (ध्यायेत्) ध्यान करे, (परम-आह्लादपूर्वकम्) अतिशय आनन्द का अनुभव करते हुए (भक्तियोगेन) भक्तियोग से (चिन्तयेत्) चिन्तन करे। (आनन्द-अश्रु पुलकेन) पुलकित होने से जब आनन्द के अश्रु प्रवाहित होते हैं, तब (दशाभावः प्रजायते) विशेष दशाभाव हो जाता है (तेन समाधिः सम्भवेत्) इससे समाधि हो जायेगी (मनोन्मनी च सम्भवेत्) और मनोन्मनी भी होएगी।

भावार्थः- अपने हृदय में इष्टदेवता के स्वरूप का ध्यान करे, अत्यन्त आनन्द से भक्तियोग से उसका चिन्तन करे जब भक्त भावाभिभूत होकर पुलकित होता है, तब आनन्द के आँसू बहने लगते हैं, तो उससे समाधि और उन्मनी सिद्ध हो जाती है।

मनोमूर्छां समासाद्य मन आत्मनि योजयेत्।।16।।
परमात्मनः समायोगात् समाधिं समवाप्नुयात्।

अन्वयः- मनोमूर्च्छां समासाद्य मनः आत्मनि योजयेत्। परमात्मनः समायोगात् समाधिम् समवाप्नुयात्।

पदार्थः- (मनोमूर्च्छां समासाद्य) साधक मूर्च्छा कुम्भक करके (मनः आत्मनि योजयेत्) मन को आत्मा से संयुक्त करे। (परमात्मनः समायोगात्) परमात्मा के साथ मन का संयोग होने से (समाधिम् समवाप्नुयात्) समाधि पा लेगा।

भावार्थः- साधक मूर्च्छा कुम्भक करके मन को आत्मा से संयुक्त करे। परमात्मा में मन के संयोग से साधक को समाधि लग जाती है।

इति ते कथितं चण्ड! समाधिम्मुक्तिलक्षणम्।।17।।

राजयोगः समाधिः स्यात् ऐकात्मन्येव साधनम्।

उन्मनी सहजावस्था सर्वे चैकात्मवाचकाः।।18।।

अन्वयः- चण्ड! इति ते मुक्तिलक्षणम् समाधिम् कथितम्। ऐकात्म्यसाधनमेव राजयोगः समाधिः स्यात् उन्मनी सहजावस्था च सर्वे एकात्मवाचकाः।

पदार्थः- (चण्ड!) हे चण्डकापालि। (इति ते मुक्तिलक्षणम् समाधिम् कथितम्) तुम्हें मैंने मुक्ति स्वरूप समाधि का यह परिचय दिया है। (एकात्म्य-साधनम् एव) मन और आत्मा की एकात्मता का साधन ही (राजयोगः समाधिः स्यात्) राजयोग समाधि है। (उन्मनी सहजा अवस्था च) उन्मनी और सहजावस्था (सर्वे एकात्मवाचकाः) सभी इस एक अर्थ का ही कथन करते हैं।

भावार्थः- हे चण्डकापालि! मैंने अभी यह मुक्तिस्वरूप अर्थात् अवश्य ही मुक्तिप्रदान करने वाली समाधि को तुम्हे बताया है। मन और आत्मा की एकात्मता ही समाधि है। इसे ही राजयोग समाधि उन्मनी और सहजावस्था आदि नामों से स्मारण किया जाता है।

जले विष्णुः स्थले विष्णुः विष्णुः पर्वतमस्तके।

ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्व विष्णुमयं जगत्।।19।।

अन्वयः- विष्णुः जले, विष्णुः स्थले, विष्णुः पर्वतमस्तके, विष्णुः ज्वालामालाकुले, सर्वं जगत् विष्णुमयम्।

पदार्थः- (विष्णुः जले) विष्णु जल में है, (विष्णुः स्थले) विष्णु स्थल में है, (विष्णुः पर्वतमस्तके) विष्णु पर्वत पर है, (विष्णुः ज्वालामाला-आकुले) विष्णु ज्वालासमूह युक्त अर्थात् अग्नि में है, (सर्वजगत् विष्णुमयम्) सब संसार विष्णुमय है।

भावार्थः- विष्णु जल थल पर्वत और अग्नि सब में है सम्पूर्ण जगत् विष्णुमय है।

भूचराः खेचराश्चापि यावन्तो जीवजन्तवः।
वृक्षगुल्मलतावल्लीतृणाद्याः वारि पर्वताः।।20।।
सर्वं ब्रह्म विजानीयात् सर्वं पश्येच्च आत्मनि।

अन्वयः- भूचरा खेचराः अपि च यावन्तः जीवजन्तवः, वृक्ष गुल्म-लता-वल्ली-तृणआद्याः वारि-पर्वताः सर्वं ब्रह्म विजानीयात् आत्मनि च सर्वं पश्येत्।

पदार्थः- (भूचराः) भूमि पर विचरण करने वाले (खेचराः) आकाश में उड़ने वाले पक्षी आदि (वृक्षगुल्मलतावल्ली तृणाआद्याः) वृक्ष झाड़ी लता अधिक फैलने वाली मोटी लता और तृण आदि (वारि-पर्वताः) समुद्र आदि जलाशय और पर्वत (सर्वम् ब्रह्म विजानीयात्) सबको ही ब्रह्म समझे (सर्वं च आत्मनि पश्येत्) सभी कुछ को आत्मा में ही समझे।

भावार्थः- विश्व में जो कुछ भी है मनुष्य पशु-पक्षी कीट पतङ्ग पेड़-पौधे समुद्र-पर्वत सब को ही ब्रह्म समझे (सर्वं खल्विदम्ब्रह्म) और सबको आत्मा में समझे।

आत्मा घटस्य चैतन्यमद्वैतं शाश्वतम् परम्।।21।।
घटादि भिन्नतो ज्ञात्वा वीतरागो विवासनः।

अन्वयः- घटस्य चैतन्यम् आत्मा अद्वैतम् परं शाश्वतम् (तं) घटादि भिन्नतः ज्ञात्वा वीतरागः (सन्) विवासनः (विचरेत्)।

पदार्थः- (घटस्य चैतन्यम्) शरीर में विद्यमान चेतन तत्त्व (परं शाश्वतम् अद्वैतम्) सर्वथा नित्य और अद्वैत है, उसे (घटादि भिन्नतः ज्ञात्वा) शरीर आदि से भिन्न समझकर (वीतरागः) रागरहित होकर (विवासनः) वस्त्र आदि सर्वस्व त्यागी होकर रहे।

भावार्थः- शरीर में विद्यमान जो चेतनतत्त्व है, वह आत्मा परम नित्य और अद्वैत है, वह शरीर से भिन्न है और मैं वही हूँ, यह समझकर रागरहित होकर भौतिक पदार्थों को त्याग कर विचरण करे।

एवं विधिः समाधिः स्यात् सर्वसंकल्पवर्जितः।।22।।
स्वदेहे पुत्रदारादिबान्धवेषु धनादिषु।
सर्वेषु निर्ममो भूत्वा समाधिं समवाप्नुयात्।।23।।

अन्वयः- सर्वसंकल्पवर्जितः समाधिः एवं विधः स्यात्। स्वदेहे पुत्रदारबान्धवआदिषु धन-आदिषु सर्वेषु निर्ममः भूत्वा समाधिम् सम्-अवाप्नुयात्।

पदार्थः- (सर्वसंकल्पवर्जितः) सब संकल्पों से रहित (एवं विधः समाधिः स्यात्) इसप्रकार की समाधि होती है, (स्वदेहे) अपने शरीर के प्रति (पुत्रदारा-आदि बान्धवेषु) पुत्र स्त्री और बन्धु बान्धवों के प्रति (धनादिषु) धन आदि के प्रति (निर्ममः भूत्वा) ममतारहित होकर (समाधिम् समवाप्नुयात्) समाधि को प्राप्त करे।

भावार्थः- सब प्रकार के संकल्पों से रहित यह समाधि होती है। इसलिए अपने शरीर पुत्र स्त्री बन्धु बान्धव धन आदि सबके प्रति ममता रहित होकर समाधि को प्राप्त करे।

तत्त्वं लयामृतं गोप्यं शिवोक्तानि विधींस्तथा।
वाचां संक्षेपमादाय कथितं मुक्तिलक्षणम्।।24।।

अन्वयः- गोप्यम् लयामृतम् तत्त्वम् शिवोक्तानि विधीन् तथा मुक्तिलक्षणम् वाचां संक्षेपम् आदाय कथितम्।

पदार्थः- (गोप्यम्) प्रकट न करने योग्य (लयामृतम्) समाधिरूप अमृत (शिवोक्तानि विधीन्) शिव द्वारा बतायी गयी विधियाँ तथा

(मुक्तिलक्षणम्) मुक्ति का स्वरूप यह सब (वाचां संक्षेपम् आदाय) संक्षिप्त भाषा में (कथितम्) मैंने कह दिया है।

भावार्थः- अत्यन्त गोपनीय अमृतस्वरूप समाधि के तत्त्व को और शिवजी द्वारा बतायी गयी विधियों को मैंने तुम्हें संक्षिप्त भाषा में बता दिया है।

इति ते कथितश्चण्ड! समाधिः दुर्लभः परः।
यज्ज्ञात्वा न पुनर्जन्म जायते भूमिमण्डले।।25।।

अन्वयः- चण्ड! इति ते दुर्लभः परः समाधिः कथितः यत् ज्ञात्वा भूमिमण्डले पुनः जन्म न जायते।

पदार्थः- (चण्ड!) हे चण्डकापालि! (इति ते) इसप्रकार तुम्हारे लिए (दुर्लभः परः समाधिः) दुर्लभ उत्कृष्ट समाधि को (कथितः) मैने बता दिया है, (यत् ज्ञात्वा) जिसे जानकर (भूमिमण्डले) भूमण्डल में (पुनः जन्म न जायते) फिर जन्म नहीं होता।

भावार्थः- हे चण्डकापालि! मैंने तुम्हें इस प्रकार दुर्लभ और श्रेष्ठ समाधि का उपदेश कर दिया है, जिसे जान लेने पर भविष्य में पुनः जन्म नहीं होता, साधक मुक्त हो जाता है।

।इति श्रीघेरण्डसंहितायां श्री घेरण्डचण्डकापालिसंवादे
समाधियोगो नाम सप्तमः उपदेशः।।
।समाप्तश्चायं ग्रन्थः।

।इस प्रकार घेरण्डसंहिता में श्री घेरण्ड एवं चण्डकापालि के संवाद के रूप में समाधियोग नामक यह सतवाँ उपदेश पूर्ण हुआ।।
। यह ग्रन्थ भी पूर्ण हुआ।

लिखितेन विस्तृतेन उपोद्घातेन संहिता। संशोधिता आचार्येपाह्वेन त्रिविक्रमात्मजेन यादव शर्मणा नेपालदेशीयेन पं. सोमनाथशर्मणा च (मूलमात्र) ७००.००

चरक संहिता (आयुर्वेद) महर्षिणा पुनर्वसुनोपदिष्टा, तच्छिष्येणाग्निवेशेन प्रणीता, चरकदृढ़लाभ्यां प्रतिसंस्कृता। श्रीचक्रपाणिदत्तविरचितया आयुर्वेद-दीपिकाव्याख्या संवलिता। आचार्योपाह्वेन त्रिविक्रमात्मजेन यादवशर्मणा संशोधिता। ६००.००

सुश्रुत संहिता प्रश्नमाला (सुश्रुत संहिता पर आधारित ६२०० प्रश्नों का संग्रह) डा. अनील कुमार गक्खड़ एवं डा. अनुप कुमार गक्खड़ ४२५.००

कौमारभृत्य। डा. स्वामी नाथ मिश्र ७५.००

पादप भैषज्य विज्ञान। डा. स्वामी नाथ मिश्र १५०.००

नातुरोऽपथ्यविज्ञान। डा. स्वामी नाथ मिश्र २५०.००

लेप संग्रह। डा. स्वामी नाथ मिश्र ७५.००

मोक्षायुर्वेद संग्रह (अध्यात्म चिकित्सा) डा. स्वामी नाथ मिश्र १७५.००

वैद्य सहचर। हिन्दी टीका सहित। डा. टी.एल. देवराज ७५.००

SUSRUTA SAMHITA - UTTAR STHANA (Sanskrit Text, Anvaya, Transliteration, Annotation alongwith English equivalents,Translation and Commentary in English) Dr. Hemanta Panigrahi

Part-I – **850.00** Part II **1250.00** Rest Vols. **Soon**

KAYACIKITSA (Sanskrt text in Roman, English Translation, Index etc.) According to CCIM Syllabus – Dr. H.L. Sharma & Sudha Sharma

Fourth Paper **Part-I : PANCHAKARMA** **1000.00**

Fourth Paper Part-II: A. (Rajuvenation Therapy) **750.00**

B. Virilification-Therapy (Vājīkaraṇa Sexology) **650.00**

Rest Vol. ***Soon***

ĀMAVATA VIJNĀNA (Rheumatology in Ayurveda) *By* Dr. Loknath Sharma, Dr. Ashwini Kumar Sharma **125.00**

OBESITY ETOPATHOGENESIS AND AYURVEDIC MANAGEMENT *By* Dr. Loknath Sharma, Dr. Ashwini Kumar Sharma **75.00**

MATERIA MEDICA AND HERBAL PHARMACOLOGY *By* Dr. Amritpal Singh **300.00**

आयुर्वेद का इतिहास (भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद्, नई दिल्ली द्वारा स्वीकृत पाठ्यक्रमानुसार)
डा. अनुप कुमार गक्खड़ १७५.००

आयुर्वेदीय रसशास्त्र (भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद्, नई दिल्ली द्वारा स्वीकृत पाठ्यक्रमानुसार) डा. मनोज कुलश्रेष्ठ शीघ्र

DRAVYAGUNA VIJNĀNA (According to CCIM Syllabus) - Dr. Amritpal Singh 650.00

BASIC PRINCIPLES OF NATURAL & MEDICAL SCIENCES IN VEDĀS & PURĀNĀS. Dr. H.L. Sharma & Dr. (Smt.) Sudha Sharma 500.00

कायचिकित्सा (भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद्, नई दिल्ली द्वारा स्वीकृत पाठ्यक्रमानुसार) डा. अजय कुमार शर्मा प्रथम भाग २७५.००
द्वितीय भाग ५००.०० तृतीय भाग ४००.००
चतुर्थ भाग २७५.०० १-४ भाग सम्पूर्ण १४५०.००

BHĀVAPRAKĀSA NIGHANTU. Sanskrit text with English Translation. Dr. Amrit Pal Singh 950.00

द्रव्यगुण विज्ञान। डॉ. अश्वनी कुमार शर्मा प्रथम भाग १५०.००

आयुर्वेद चिकित्सा। डा. स्वामी नाथ मिश्र २००.००

विसर्ग से सृष्टि की उत्पत्ति। (प्रत्यक्ष शारीर दर्शन)
डा. एच.एल. शर्मा ११५.००

दिव्य औषधि सोम। डा. एच.एल. शर्मा शीघ्र

THE PANCAKARMA TREATMENT OF AYURVEDA WITH KERALA SPECIALITIES (Keraliya Pancakarma) Revised Edition. Dr. T.L. Devaraj 500.00

AUTOBIOGRAPHY OF PROF. DR. T.L. DEVARAJ AND HIS WORKS AND ACHIEVEMENTS.
Prof. Dr. T.S. Vanajakshamma
P. Joshi & Vaidya Poornima Bhat 250.00

आयुर्वेद प्रवेश परीक्षा प्रश्नमाला। अनुप कुमार गक्खड़ एवं अनिल कुमार गक्खड़। **प्रथम भाग ४००.०० द्वितीय भाग** शीघ्र

VRANA AND ITS HEALING. Dr. Raakhee Mehra 650.00

BASIC PRINCIPLES OF KRIYA SHARIRA (A Treatise on Ayurvedic Physiology) As per CCIM Syllabus.
Dr. Srikant Kumar Panda 400.00

आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान (भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद्, नई दिल्ली द्वारा स्वीकृत पाठ्यक्रमानुसार)
डॉ. निशि अरोड़ा — १६५.००

आयुर्वेदीय रसशास्त्र। डॉ. स्वामीनाथ मिश्र — १८०.००

आयुर्वेदीय रोग विज्ञान एवं विकृति विज्ञान १-२ भाग (भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद्, नई दिल्ली के पाठ्यक्रमानुसार)
डॉ. लोकनाथ मिश्र प्रथम भाग २७५.०० द्वितीय भाग — शीघ्र

हृदय एक अद्भुत यन्त्र (Ayurvedic Treatment of Heart Diseases) आचार्य ब्रह्मदत्त शर्मा, डॉ. धर्मवीर — १७५.००

द्रव्यगुण आदर्श। भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद्, नई दिल्ली द्वारा स्वीकृत नवीन पाठ्यक्रमानुसार।
डॉ. नरेश कुमार भार्गव प्रथम भाग ४००.०० द्वितीय भाग — शीघ्र

पोषाहार एवं उसकी उपयोगिता (सर्वे सन्तु निरामया:, व्यक्तिगत स्वास्थ्य) Personal Hygine डा. एच.एल. शर्मा, डा. सुधा शर्मा — शीघ्र

वैज्ञानिक यौगिक एवं आध्यात्मिक चिकित्सा
(Scientific Method of Yogic Spiritual Treatment)
डा. एच.एल. शर्मा व डा. सुधा शर्मा — शीघ्र

माधव निदान प्रश्नमाला। डा. अनुप कुमार गक्खड़, अनिल कुमार गक्खड़ — २२५.००

चौखम्भा आयुर्वेद शब्दकोश (संस्कृत हिन्दी)
डा. एच.एल. शर्मा — ६००.००

DHANWANTRY NIGHANTU. (Sanskrit Text with English Translation) Dr. Amritpal Singh — 550.00

RAJ NIGHANTU Sri Narhari (Sanskrit Text with English Translation) Dr. Amritpal Singh — Soon

रस-संहिता (रसरत्नाकर-वादिखण्डस्य अध्ययनम्)
डा. स्वामीनाथ मिश्र — ३५०.००

आयुर्वेद में आरोग्य और कुटुम्ब कल्याण।
डा. टी.एल. देवराज — २००.००

THE PRACTICAL PANCAKARMA THERAPY (For Final Year Students of BAMS) Dr. T.L. Devaraj — 2500.00

आयुर्वेद परिचय। आचार्य राजकुमार जैन — ३००.००

रोग विज्ञान एवं विकृति विज्ञान सम्पूर्ण (भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद्, नई दिल्ली के पाठ्यक्रमानुसार) डा. अनुप कुमार गक्खड़ एवं डा. अनिल गक्खड़ — शीघ्र

मेदोवृद्धि विवेचनम् (मोटापा कम करने के उपाय)
डा. विजय प्रकाश पाठक शास्त्री १००.००

दत्तात्रेय-योगशास्त्र हिन्दी एवं अंग्रेजी व्याख्या सहित।
परमहंस स्वामी अनन्त भारती १२५.००

अष्टांग हृदय (सूत्रस्थान) (भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद्,
नई दिल्ली द्वारा स्वीकृत पाठ्यक्रमानुसार) डा. एच.एल. शर्मा **शीघ्र**

शार्ङ्गधर संहिता। डा. विजय प्रकाश पाठक शास्त्री **शीघ्र**

ज्वर चिकित्सा (चरक संहिता के संदर्भ में)।
डा. अनूप कुमार गक्खड़ / डा. अनिल गक्खड़ **शीघ्र**

आँवला (चरक संहिता के संदर्भ में) डा. अनूप कुमार गक्खड़ /
डा. अनिल गक्खड़ **शीघ्र**

हरीतकी (चरक संहिता के संदर्भ में) डा. अनूप कुमार गक्खड़/
डा. अनिल गक्खड़ **शीघ्र**

दोष-धातु-मल-विज्ञान (चरक संहिता के संदर्भ में)
डा. अनूप कुमार गक्खड़ / डा. अनिल गक्खड़ **शीघ्र**

अष्टांग हृदय संहिता। (मूलमात्र)। श्रीमद्वाग्भट्टविरचिता।
श्रीजीवानन्दविद्यासागरभट्टाचार्य्येणा (मूलमात्र) ७००.००

योगरत्नाकर। परमहंस स्वामी अनन्त भारती **शीघ्र**

रसेन्द्रसारसंग्रहः। श्रीगोपालकृष्ण सङ्कलितः। श्रीमज्जीवानन्द-
विद्यासागरभट्टाचार्य्येण सङ्कलितया, तदात्मजेन पण्डिता-श्रीआशु-
बोध-विद्याभूषणेन प्रतिसंस्कृतया टीकया समलङ्कृतःप्रकाशितश्च
(रसयन्त्रचित्रसंवलितः) **शीघ्र**

RĀJMĀRTAṆḌA (Sanskrit Text with English Translation)
N.S. Subrahmanyam **350.00**

औषधीय कैवल्यशास्त्रम् (रसेश्वर दर्शनम्)।
डा. स्वामीनाथ मिश्र ७५०.००

योग और आयुर्वेद आचार्य राजकुमार जैन ३००.००

आयुर्वेद दर्शन आचार्य राजकुमार जैन ३५०.००

आयुर्वेद में पर्यावरण (पर्यावरण संग्रह)। डॉ. स्वामीनाथ मिश्र १००.००

RASAYAN & AGEING - Dr. (Mrs.) Sujata Yadav **350.00**

नूतन आयुर्वेदीय रसशास्त्र (भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद्,
नई दिल्ली के पाठ्यक्रमानुसार) डॉ॰ संतोष कुमार मिश्र ३००.००

TREATMENT OF COMPLICATED DISEASES WITH AYURVEDA MEDICINE. - Dr. T.L. Deravaj **300.00**

PRINCIPLE AND TREATMENT OF AYURVEDA.
- Dr. Swaminath Mishra **225.00**

IMPORTANT AYURVEDIC BOOKS

Susruta Samhita-Uttar Tantra (Study on Sālākya Tantra) Anvaya (Natural Word Order, Transliteration, Annotation alongwith English Equivalents, Translation & Commentary in English. Vol. I – Dr. Hemanta Panigahi

Kayacikitsa (Sanskrit Text in Roman, English Translation, Index etc.) According to CCIM Syllabus. Dr. H.L. Sharma & Dr. (Smt.) Sudha Sharma **Fourth Paper (Part-I) : Panchakarma, Fourth Paper (Part-II (A)) : Rejuvenation Therapy, Fourth Paper (Part-II (B)) : Vajikarana Therapy.**

Amavata Vijnana (Rheumatology in Ayurveda). Dr. Loknath Sharma, Dr. Ashwini Kumar Sharma.

Obesity Etopathogenesis and Ayurvedic Management. Dr. Loknath Sharma, Dr. Ashwini Kumar Sharma.

Materia Medica and Herbal Pharmacology. Dr. Amritpal Singh.

Dravyaguna Vijnana (According to CCIM Syllabus). Dr. Amritpal Singh.

Basic Principles of Natural & Medical Sciences in Vedās & Purānās. Dr. H.L. Sharma & Sudha Sharma.

Bhāvaprakāsa Nighantu (Sanskrit Text with English Translation). Dr. Amritpal Singh

Panchakarma Treatment of Ayurveda with Kerala Specialities. Dr. T.L. Devaraj

Autobiography of Prof. Dr. T.L. Devaraj & his works & Achievements. Dr. T.S. Vanajakshamma P. Joshi & Vaidya Poornima Bhatt.

लेप संग्रह — डा. स्वामीनाथ मिश्र

मोक्षायुर्वेद संग्रह (अध्यात्मक चिकित्सा)—डा. स्वामीनाथ मिश्र

वैद्यसहचर—डा. टी.एल. देवराज

आयुर्वेद का इतिहास—डा. अनुप कुमार गक्खड़

आयुर्वेदीय रसशास्त्र—डा. मनोज कुलश्रेष्ठ

कायचिकित्सा—डा. अजय कुमार शर्मा 1- भाग

द्रव्यगुण विज्ञान—डा. अश्वनी कुमार शर्मा

अनुभूत चिकित्सा विधि—डा. स्वामीनाथ मिश्र

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA

POST BOX NO. 2206

Bungalow Road, 9 U.B., Jawahar Nagar, Delhi-110007 (India)

Phone : 011-40230818 Mob.: 9910289743

Email : chaukhambhaorientalia@gmail.com

Web : www.chaukhambhaorientalia.com